कश्मीर शाक्त विमर्श



जगन्नाथ सिबू

कश्मीर शाक्त विमर्श जगन्नाथ सिबू

कश्मीर शाक्त विमर्श

(केन्द्रीय सरकार,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
द्वारा 1988-89 ई० में पुरस्कृत)

लेखक
जगन्नाथ सिबू
भूतपूर्व अध्यक्ष,
हिन्दी संस्कृत विभाग,
ओरियण्टल कालेज, श्रीनगर (कश्मीर)

प्रकाशक
शक्ति प्रकाश केन्द्र
पुरुषयार, श्रीनगर (कश्मीर)

प्रथम संस्करण II 1000
दिसम्बर, 1989 ई०,
मार्ग शुक्ल पक्ष 5065 सप्तर्षि
मूल्य 25 रुपये

पुस्तक प्राप्ति के स्थान

1. शक्ति प्रकाश केन्द्र,
   पुरुषयार, श्रीनगर (कश्मीर)
2; श्री जगन्नाथ सिब्बू
   खारदोरी,
   पुरुषयार, श्रीनगर (कश्मीर)

मुद्रक—डी० पाल प्रिन्टर्स
790/5, चिराग दिल्ली
नई दिल्ली-17
दुरभाष—6436369

वक्तव्य

कश्मीर प्राचीन काल से तन्त्रविद्या का प्रमुख केन्द्र रहा है, जिसका सम्बन्ध शैव तथा शाक्त तंत्रों से है। इन दोनों प्रकार के तन्त्रों का प्रचार यहां भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न आचार्यों ने साधकों के पूर्णत्व लाभ के लिए तथा उनकी प्रसुप्त-आध्यात्मिक-संवित् शक्ति को जगाने के लिए किया है। उनका विचार था :—

"संविदेव हि भगवती वस्तूपगमे कारणम्"

भगवती संवित् शक्ति ही वस्तुनिर्देश की प्रदर्शिका है, जो सूक्ष्म ज्ञान स्वरूपा है। मन्त्रदर्शी ऋषिगण इस संवित् शक्ति का अनुग्रह प्राप्त करके सर्वज्ञ होते थे।

2. वेदों की तरह तन्त्र भी ज्ञान मूलक हैं। इन दोनों के निर्माता स्वयं परमशिव हैं। शास्त्र वाक्य है—

"शिवस्तन्त्र कर्ता, शिव एव वेद पुरुषः"

यह तन्त्र या वेदात्मक दिव्य ज्ञान अपौरुषेय है जो कर्म, ज्ञान और भक्ति का उद्भावक है। यह ज्ञान दो प्रकार का है। (१) परज्ञान, (२) अपरज्ञान। (१) पर ज्ञान

भगवत्तत्त्व को प्रकट करता है। यह निवृत्तिमूलक है। (२) अपर ज्ञान जीवतत्त्व या पशुभाव का द्योतक है। इससे मायिक जगत् का अवबोध होता है जो प्रवृत्ति मूलक है। इसी ज्ञान का सन्देश परमगुरू आदिनाथ ने वेदों और तन्त्रों में दिया है। यद्यपि स्वरूपतः शैव तथा शाक्त तन्त्र आपस में कुछ-कुछ भिन्न दीख पड़ते हैं, तथापि इन दोनों के सिद्धान्त एक जैसे ही हैं। प्रस्तुत लेख शाक्तमत के समयाचार की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है जिसका अभिप्राय निष्काम भाव से तन्त्र और वैदिक मार्ग का अनुसरण करते हुए साम्व सदाशिवरूप शिव और शक्ति की एकात्मकता में उपासना करना है। इस भाव का प्रचार काशमीर में सर्वत्र और सदा रहा है। यहाँ के आचार्यों का मत है—

"न शिवः शक्तिरहितो न शक्तिर्व्यतिरेकिणी।

(शि० ह०)

शिव शक्ति से रहित नहीं है और न शक्ति शिव से भिन्न है अपितु दोनों अंगांगिभाव में एक हैं। इसी एकरूपता के आधार पर शिव तथा शाक्त मतावलम्बी शिव-शक्ति को अर्धनारीश्वर रूप में एक मानते हैं। इसी आशय की पुष्टि शिवमन्दिरों के लिंग और प्रणाली, जो अंगांगिभाव

में हैं, की जाती है। अतः शैव और शाक्त सिद्धान्तों के अनुसार बिन्दु और त्रिकोण के प्रतीक वस्तुतः एक ही हैं। त्रिपुरा सिद्धान्त का मत है :—

"त्रिकोण रूपिणी शक्तिर्बिन्दुरूपधरः शिवः।
अविनाभाव सम्बन्ध स्तस्माद्बिन्दुस्त्रिकोणयोः ॥"

"ललिता त्रिशती"

शक्ति त्रिकोणरूपिणा है और शिव बिन्दु स्वरूप है। इनका आपस में अविनाभाव सम्बन्ध है। अर्थात् यह दो भिन्न नहीं, एक हैं। काश्मीरिक परमशाक्त श्री साहिब कौल ने भी अपनी भक्तिपरक रचनाओं में इस बात की पुष्टि की है। काश्मीरिक शैव तथा त्रिपुरासिद्धान्त भी इसी भाव के प्रतिपादक हैं। केवल अन्तर इतना है कि शैव शिव को विशिष्टता देते हैं तथा शाक्त शक्ति को।

3. वंश परंपरा से शाक्त होने के नाते कश्मीरी पण्डित समाज भी ऐसा मानता आया है। हम भी दुर्गा पूजन के अवसर पर परमशिव पराशक्ति के अंगांगिभाव को दृष्टि में रख कर सर्वप्रथम 'बहुरूपगर्भ' का पाठ करते हैं और फिर "दुर्गासप्तशती" का। "बहुरूपगर्भ" आत्मशक्ति सम्पन्न आनन्दमय स्वच्छन्दनाथ परमशिव का स्तोत्र है जो सब प्रकार के छिद्रों (न्यूनताओं) को पूर्ण करने वाला

है । इसके आवश्यक पाठ के विषय में शास्त्रीय निर्देश भी इस प्रकार हैं—

"यागारम्भे च यागान्ते पठितव्यं प्रयत्नतः ।
निश्छिद्र करणं प्रोक्तं स्वभाव परिपूरणम्" ।।

4. किसी अनुष्ठान के आदि तथा अन्त में इसका अवश्य पाठ करना चाहिए जिससे क्रिया अछिद्र हो और कार्य परिपूर्ण हो । इसी शाक्त परम्परा को जीवित रखने के लिए तथा भक्तजनों की भक्ति भावना की पुष्टि के लिए यह भक्ति-पुष्प 'कश्मीर शाक्त विमर्श' के नाम से परावाग् स्वरूपिणी त्रिजगज्जननी राजराजेश्वरी श्रीचक्रे-श्वरी त्रिपुरसुन्दरी को समर्पित किया जा रहा है । इसी स्वयम्भू श्रीचक्र के कारण काश्मीर भारत का प्रमुख शक्तिधाम माना जाता है, जहां इसी पराशक्ति के अवान्तर रूपों में बाला, शारिका, महाराज्ञी, ज्वालामुखी, बीडा, महाकाली, वैखरी, शारदा, शिवा और उमा के भी पावन शक्तिपीठ प्रसिद्ध हैं जो यहां के कश्मीरी पण्डित परिवारों की परम्परागत कुलदेवियाँ हैं ।

5. अन्त में श्री पृथ्वीनात्र पुष्प जी तथा श्री दीनानाथ यक्ष शास्त्री का आभार व्यक्त करना अपना कर्त्तव्य समझता हूं, जिन्होंने उचित परामर्श देने तथा प्रस्तावना

लिखने से इस पुस्तिका की श्री-वृद्धि की है; साथ ही देहली दूरदर्शन के वरिष्ठ अधिकारी श्री गौरी शंकर रैना को धन्यवाद देता हूं जिन्होंने इसकी प्रतिलिपि लिखने तथा मुद्रित करने में सहयोग दिया है।

6. मैं श्री प्रेमनाथ साधु, अवकाश-प्राप्त उप-सचिव, भारत सरकार, का बहुत ही आभारी हूँ कि उनके सतत प्रयास से ही इस पुस्तक का प्रकाशन सम्पन्न हुआ।

7. मैं प्रिय पाठकों से निवेदन करता हूं कि यदि प्रस्तुत रचना में भूल से कुछ त्रुटियां रह गई हों तो कृपया उनके विषय में मुझे सूचित करें ताकि अगले संस्करण में उनका संशोधन हो सके।

जगन्नाथ सिब्बू

पुस्तक सूची

विवेक चूड़ामणि	श्वेतातरोपनिषनद्
दुर्गा सप्तशती	ऋग्वेद
यजुर्वेद	सामवेद
अथर्ववेद	कात्यायनी तन्त्र
सांख्यायन गृह्य सूत्र	हिरण्यकेशी गृह्य सूत्र
वाजसनेयी संहिता	तैतरीयारण्यक
नारायणोपनिषद्	रामायण
महाभारत	कालिका पुराण
देवी पुराण	बृहन्नन्दिकेश्वर पुराण
मार्कण्डेय पुराण	मत्स्य पुराण
वामन पुराण	स्कन्द पुराण
बृहद्धर्म पुराण	दुर्गा सप्तशती प्राधानिक रहस्य
वैकृति रहस्य	प्राधानिक रहस्य
मूर्ति रहस्य	अहिर्बुध्न्य संहिता
सौन्दर्य लहरी	शिव दृष्टि

प्रत्यभिज्ञा हृदय	ललिता त्रिशती
कामकला विलास	मनुस्मृति
कठोपनिषद्	पातंजल योग-दर्शन
श्रीमद्भगवद्गीता	भावनोपनिषद्
परशुराम कल्पसूत्र	परमानन्द तन्त्र
सुभगोदय	शारदा तिलक
देवी भागवत	पूर्वमीमांसा

—※—

: ६ :

दो शब्द

"कश्मीर शाक्त विमर्श" नाम की पुस्तिका को पाठकों के सामने आना ही चाहिए। विशेषकर इसलिए कि इसमें क्षेत्रीय परम्परा के प्रामाणिक अवशेष बोल उठे हैं। शाक्त साधना के कुल परम्परागत परिवेष में पले पं० जगन्नाथ सिबू शास्त्री का यह रचनात्मक प्रयास शाक्त याग से कुछ कम नहीं। क्योंकि शास्त्रीय ग्रन्थों में तन्त्र दर्शन का जो विवेचन मिलता है उसे परम्परा के व्यावहारिक अनुसाधन में ही हृदयंगम किया जाता है। व्यावहारिक आस्था के धनी शास्त्री जी ने अपनी कुलागत परम्परा की रूपरेखा को पाठकों के आगे रखने का जो अनुष्ठान किया है, आशा है उससे जारी रखने वाले और भी साधक सामने आयेंगे। कश्मीर में ही नहीं, देश भर में। क्षेत्रीय परम्पराओं के प्रकाश में ही राष्ट्रीय परम्पराओं की बहुविधता के मूलभूत तत्त्वों की पहचान सम्भव है। "कश्मीर शाक्त विमर्श" का

प्रकाशन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है इसका समुचित समादर होना ही चाहिए।

प्रो० पृथ्वीनाथ पुष्प,
भूतपूर्व निदेशक,
अनुसंधान केन्द्र तथा प्रकाशन विभाग,
जम्मू कश्मीर राज्य, श्रीनगर।

श्रीनगर,
६ दिसम्बर, १९८५



प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तिका "शाक्त विमर्श" को मैंने साद्यन्त पढ़ा। इसमें सुयोग्य लेखक ने शाक्त तत्त्व जैसे जटिल एवं गूढ़ विषय को पाठकों को समझाने के लिए प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। प्राय: शक्ति सम्बन्धीय समस्त विषयों पर प्रकाश डाला गया है। श्रीचक्र को पूजा विधान सहित इस में युक्तियुक्त विवेचना की गई है तथा पराशक्ति का समुन्नय शैवतंत्रों का समाश्रय लेकर समुचित रूप से किया गया है। यहां पर यह लिखना अप्रासंगिक न होगा कि कश्मीर में यह अपने विषय को प्राथमिक पुस्तिका है।

कश्मीर शाक्तधामों में प्रमुख धाम है। यहां त्रिपुर-सुन्दरी, बाला, महाराज्ञी, ज्वालामुखी, शारिका, बीडा, वैखरी, शारदा, शिवा, उमा आदि के प्रसिद्ध शाक्त धाम हैं जिनसे सम्बन्धित माहात्म्य तथा अनेक अद्भुत गाथाएं हैं जो शक्ति की महत्ता का प्रतिपादन करती हैं। काश्मीरी प्रत्नविद्या प्रकाश कार्यालय से इस विषय पर देवी रहस्य नामक ग्रन्थ छप चुका है जिसमें अनेक शक्तिपरक

देवियों के पंचांग लिखे गये हैं जो उपर्युक्त शक्ति देवियों की विशिष्टता के द्योतक हैं।

शक्ति के विषय में परलोकवासी सर जान वुडरोफ कलकत्ता हाईकोर्ट के (भूतपूर्व जज) आर्थर अवलान तांत्रिक टेक्स्ट के अन्तर्गत शक्ति एण्ड शाक्ता सीरीज़ माला लिखकर इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। आशा करता हूँ कि भविष्य में विद्वान् लेखक इस बिषय की देशीय पारिभाषिकता तथा साम्प्रदायिकता का उल्लेख करके सुचारू रूप से कश्मीरी पण्डित एवं हिन्दू जनता को भरसक अनुगृहीत करने का प्रयास करेंगे। अन्त में लेखक के सराहनीय एवं सफल प्रयास के फल-स्वरूप बिना बधाई दिये हमसे रहा नहीं जाता।

दीनानाथ यक्ष, शास्त्री
भूतपूर्ब अनुसन्धान सहकारी,
जम्मू-कश्मीर प्रदेश

विषय सूची

शक्ति और उसका स्वरूप

कुछ भी कर सकने की योग्यता या सामर्थ्य ही शक्ति है। पूर्व मीमांसा में इसका लक्षण इस प्रकार मिलता है :—

"सामर्थ्यं सर्वभावानां शक्तिरित्यभिधीयते"

यह ऐसा सूक्ष्म गुण या धर्म है जो विश्व प्रपंच की सारभूता वस्तु होकर तथा कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों की अधिष्ठान बन कर सारे विश्व को सत्ता, स्फूर्ति तथा सरसता प्रदान करती है। यही सर्वैश्वर्यमयी—भगवती—शक्तिनित्या -ब्रह्म-लीला-प्रकृति है जो पराशक्ति स्वरूपा होकर परंब्रह्म परमशिव में सर्वथा व्याप्त है जिससे वह शक्तिमान् है।

देवी भागवत के शक्तिलक्षण के अनुसार शक्ति शब्द 'शक्' तथा 'क्ति' के संयोग से बना है। 'शक्' ऐश्वर्य तथा 'क्ति' पराक्रम का वाचक है। तद्रूपा सर्वैश्वर्यमयी तथा पराक्रममयी होने के कारण एवं इन दोनों की देने वाली होने के कारण यह शक्ति कहलाती है।

ऐश्वर्यवचनः शक्च क्तिः पराक्रम एवच,
तत्स्वरूपा तयोर्दात्री साशक्ति परिकीर्तिता।

(देवी भागवत)

ऐसी ऐश्वर्यमयी महाशक्ति के सायुज्य से ही परमशिव सृष्टि स्थिति संहार पिधान (विलय) तथा अनुग्रह पंचकृत्य करने में समर्थ होता है अन्यथा नहीं। अतः शक्तिमान् से अभिन्न होने के कारण यह शक्ति साक्षात् ब्रह्म स्वरूपा है। विवेक चूड़ामणि में आदिशंकर ने इसी शक्ति का वर्णन इस प्रकार किया है—

अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिरनादिविद्या त्रिगुणत्मिका परा।
कार्यानुमेया सुधियैव मायया तया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते।।

त्रिगुणात्मिका-अव्यक्त ब्रह्मशक्ति अनादि, अविद्या, पराप्रकृति माया आदि अनेक नामों से पुकारी जाती है जिससे सूक्ष्म रूप में यह दृश्यमान् चराचर जगत उत्पन्न होता है। इस शक्ति या देवी का माहात्म्य वेदतंत्र तथा पुराणों में यत्र तत्र मिलता है। वेद में देवी वेदमाता गायत्री ज्ञान स्वरूपा है और तन्त्र में देवी शक्तिस्वरूपा देवमाता रूपा, सृष्टि स्थिति- प्रलयकारिणी वर्णित है। इसी प्रकार पुराणों में भी उसे विश्वरूपा पराप्रकृति माना है। वेदान्त में अद्वैतवादियों ने इसे अनादि अविद्या सत्व-रज-तमोमयी माया कहा है। श्वेतातरोपनिषद में इसी माया को परा-प्रकृति माना गया है और महेश्वर को मायाधीश।

"मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्"।

अतः परंब्रह्म से अभेद होने के कारण यह त्रिगुणमयी मायाशक्ति परंब्रह्म स्वरूपा ही है। देवी भागवत में स्वयं महामाया ने शंकर से कहा है :—

"अहमेवासं पूर्वन्तु नान्यत्किंचिन्नराधिप"

हे शंकर सर्वप्रथम सृष्टि के आरम्भ में मैं ही थी इसी स्वतःसिद्ध शक्ति को महामाया कहा गया है जो त्रिगुण-मयी होने के कारण अनिर्वचनीय है तथा परंब्रह्म से अभिन्न है। इस विषय में शंकर ने कहा है—

"पावकस्योष्णतेवेयंनुष्णाशोरिवदीधितिः।
चन्द्रस्य चन्द्रिकेवेय ममेयं सहजा ध्रुवा॥

(दे०भा०)

जैसे अग्नि में उष्णता, सूर्य में प्रकाश, चन्द्र में चांदनी उनसे अभिन्न है। इसी प्रकार यह महाशक्ति मुझ से अभिन्न है जो अनेक नामों से प्रसिद्ध है। कुछ लोग इस मायाशक्ति को तप कहते हैं। कुछ तम, कुछ जड़, कुछ अज्ञान और कुछ प्रकृति कहते हैं। किन्तु शैव इसको शक्ति या विमर्श के नाम से पुकारते हैं।

वेदान्त के अनुसार माया जड़ तथा अनित्य मानी जाती है। साथ ही चित् शक्ति को परंब्रह्म में व्याप्त मानते हैं। जिस चित् शक्ति का परिणाम जगत् है वह चित् शक्ति नित्य

है। तब जगत् कैसे अनित्य हो सकता है ? यही बात दुर्गा सप्तशती में स्पष्ट कही गई है :—

चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत्" ।

महामाया दुर्गा चित्‌रूप में ब्रह्माण्डभर में व्याप्त है। इसी चित् शक्ति को कश्मीर शैव दर्शन में विमर्श, स्फूर्ति, उल्लास, प्रकाश आदि नामों से पुकारा गया है। साथ ही शैव दर्शन में शिव को अष्टमूर्ति भो कहते हैं। यही परम-शिव शर्व रूप में पृथ्वी स्वरूप है भवरूप में जल स्वरूप है। रूद्ररूप में अग्नि स्वरूप है। उग्ररूप में वायु स्वरूप है। भीम रूप में आकाश स्वरूप है। पशुपति रूप में चन्द्र स्वरूप है। महादेव रूप में सूर्य स्वरूप है और ईशानरूप में जीव स्वरूप होकर सर्वत्र व्याप्त है। अतः परमशिव और जगत् अभेद होने के कारण जगत् सत्य है। दुर्गासप्तशती में भी इस कथन की पुष्टि होती है।

"नित्यैव सा जगन्मूर्तिर्यया सर्वमिदं ततम्"

जगन्मूर्ति स्वरूप महामाया नित्य है जिससे यह जगत् व्याप्त है।

शक्ति का प्रादुर्भाव

सर्व प्रथम शक्ति का प्रतिपादन वेदों में किया गया है। ऋग्वेद के देवीसूक्त, रात्रिसूक्त, श्रीसूक्त शक्ति स्तुति-

परक है। इसी प्रकार यजुर्वेद में 'रथे अक्षेषु०' आदि मन्त्र चतुष्टय श्री सूक्त है। "स्रावन्तीयं सामश्च' आदि मन्त्र सामवेदीय श्री सूक्त है। "श्रिये धातर्मयिदेहि" अथर्ववेदीय श्री सूक्त है। इससे सिद्ध होता है कि शक्ति अनादि काल से वेद सम्मत है। इसी लिए गायत्री को वेदमाता माना गया है। यजुर्वेदीय श्री सूक्तों में महालक्ष्मी की स्तुति की गई है जो भक्तों की अभीष्टदात्री है। यही महालक्ष्मी आद्या शक्ति मूल प्रकृति है।

मूल प्रकृति जगद्धात्री का स्वरूप :—

आद्यशक्ति को कात्यायिनी तन्त्र में ब्रह्मशक्ति जगन्माता दुर्गा के रूप में वर्णन किया गया है। जब देवासुर संग्राम में देव विजयी हुये तो उन्हें अपनी विजय से बड़ा अभिमान हुआ। वे समझने लगे कि हम बड़े पराक्रमी हैं तथा हमने अपनी शक्ति से विजय प्राप्त की है। तब ब्रह्म शक्ति जगन्माता ने उनका अभिमान दूर करने के लिए एक अद्भुत ज्योतिर्मयी मूर्ति धारण की। उसे देख कर देव गण यह निश्चय न कर सके कि यह कौन है। वे घबराये। उन्होंने अग्नि को उसके पास भेजा तब ब्रह्म शक्ति ने उसका नाम और कर्म पूछा। अग्नि बोला—"मेरा नाम अग्नि है। मैं चराचर जगत् को भस्म कर सकता हूं।"

तब महाशक्ति ने मुस्कराते हुए एक तिनका उसके

सामने फेंका और उसको जलाने की आज्ञा दी । पर अग्नि देवता उसको जला न सका और लज्जित होकर चलागया । इसके अनन्तर वायु महाशक्ति जगद्धात्री के पास चला गया । वहां उससे भी नाम और कर्म पूछा गया । उसने कहा, मेरा नाम वायु है मैं सब पदार्थों को उड़ा सकता हूं । जगद्धात्री ने उसे भी वही तिनका, जो अग्नि को जलाने के लिए दिया था, सामने फेंक कर उड़ाने की आज्ञा दी । पर वह उसे उड़ा न सका । यह अनहोनी घटना देखकर देव-राज इन्द्र समझ गये कि कोई असाधारण शक्ति है जिसमें सारी शक्तियां केन्द्रित हैं । वास्तव में यह हमारा मिथ्या अभि-मान है कि हम अपने बलबूते पर कुछ कर सकते हैं । अपितु कोई अदृश्य दिव्य शक्ति ही हमें बल प्रदान करती है, जो सर्वकर्त्री हैं । यह सोच कर इन्द्र प्रमुख सब देवगण जगन्माता महाशक्ति के शरण में आकर बोले,

"हे जगन्माता । आप ही जगदीश्वरी हो । जगद्धात्री हो तथा सर्वशक्तिमयी हो । हम शरणागत हैं । हमें क्षमा करो । कृपया अपना स्वरूप हमें दिखाइए ।" शरणागत देवगणों को प्रार्थना सुनकर महाशक्ति जगदम्बा ने विश्वरूपात्मक अपना ऐश्वर्यमय स्वरूप दिखाया जिस स्वरूप से वह चराचर जगत् को उत्पन्न करती है, पालती है । केनोपनिषद के अनुसार इसी कारण से ज्ञानी लोग उसे सर्वेश्वरी

जगद्धात्री के नाम से पुकारते हैं। दुर्गासप्तशती के ११वीं अध्याय के नीचे लिखे श्लोक में देवगण इसी जगद्धात्रो की स्तुति करते हैं।

ग्राधारभूता जगतस्त्वमेका महोस्वरूपेण यतः स्थितासि

हे माता। पृथ्वीरूप में आप ही सम्पूर्ण चराचर जगत् को धारण करती हैं।

महाशक्ति जगद्धात्री के विविध ग्रन्थों में नाम :—

इसी महाशक्ति को विविध ग्रन्थों में अनेक नामों से पुकारा गया है। "सांख्यायन गृह्यसूत्र" में इसको महाकाली कहा गया है तथा "हिरण्यकेशी महासूत्र" में भवानी नाम दिया गया है। "शुक्ल यजुर्वेद" की वाजसनेयी संहिता में इसे अम्बिका स्वरूप में रुद्र भगिनी माना गया है। "तैतरीयाख्यक" के "नारायणोपनिषद" में इसे महाज्वाला स्वरूपमय—शत्रुदहन-कारिणी दुर्गा कहा गया है। पौराणिक साहित्य में इसे पार्वती, महालक्ष्मी, भवानी, वैष्णवी आदि रूपों में माना गया है।

रामायण में भी शक्ति विषयक वर्णन है। जब राम रावण युद्ध हुआ तब देवताओं ने राम की विजय तथा रावण के नाश के लिए शरत्काल में शक्ति की पूजा की तथा राम ने भी वसन्तकाल में स्वयं अपनी विजय के लिए

शक्ति पूजा की है। यह परम्परा आज भी प्रचलित है। कालिका पुराण में इसी महाशक्ति को महा कालिका कहा गया है जो साधारण जनता को बंधनों में डालती है तथा ब्रह्मशक्ति होने के कारण बन्धन मुक्तिदात्री भी है। देवी भागवत में इसे आद्याशक्ति माना गया है जो ब्रह्मा विष्णु, और महेश में अंगागिभाव में स्थित होकर सृष्टि स्थिति लयात्मक काम करती है। तन्त्रोक्त रात्रिसूक्त में ब्रह्मा जी इसी योग निद्रा स्वरुपा महाकालिका की स्तुति करते हुए कहते हैं :—

यया त्वया जगत्सृष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत्।

सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः॥

जो विष्णु सृष्टि, स्थिति और प्रलय करने में समर्थ है उसे भी जिस महामाया ने योग निद्रा में सुलाया, उसकी कौन स्तुति कर सकता है जो सर्वथा अवर्णनीय है।

शक्ति चर्चा-परक अन्य पुराण और देवी का व्यापक स्वरूप :—

इसी प्रकार 'देवीपुराण' 'बृहन्नन्दकेश्वरपुराण' 'मार्कण्डेयपुराण' 'मत्स्यपुराण' 'वामनपुराण' 'स्कन्द पुराण' 'महा भारत पुराण' 'बृहद्धर्मपुराण' आदि में इस सत्‌चिदानन्दमयी माहामाया को भक्तानुग्रहकारिणा के रूप में वर्णन किया गया है जो समय-समय पर भक्त-रक्षा के लिए

अजन्मा होकर भी अपनी माया शक्ति से अवतार धारण करती है। दुर्गासप्तशती में मेधा ऋषि सुरथ राजा तथा समाधिवैश्य के प्रति यही बात यों वर्णन करते हैं।

देवानां कार्यसिद्धर्थमाविर्भवति सा यदा।
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ।।

विश्व में व्याप्त चेतना शक्ति तथा इन्द्रियाधिष्ठात्री होने के कारण इसी महाशक्ति को व्याप्ति तथा चेतना भी कहते हैं। दुर्गासप्तशयी की देवस्तुति में देवगण कहते हैं :—

"या देवी सर्वभुतेषु चेतनेत्यभिधीयते ।
इन्द्रियणामधिष्ठात्री भूतानामखिलेषु या ।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ।।"
"त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का त स्तुतिः स्तव्यपरापरोक्ति ।।"

आप ही चेतना हैं, व्याप्ति हैं, इन्द्रियाधिष्ठात्रा हैं सर्वव्यापक हैं, तथा सर्वात्मिका हैं। सर्वव्यापक होने के कारण यही महाशक्ति महाविद्या स्वरूपा होकर वेदवेदांगों के रूप में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द, ऋग् यजुः, साम, अथर्व, मीमांसा, न्याय, पुराण, आयुर्वेद, धनुर्वेद गन्धर्ववेंद रूप में उल्लसित होकर अष्टादश विद्यात्मिका है। दुर्गासप्तशती की देवस्तुति में कहा गया है :—

विद्याः समस्तास्तवदेविभेदाः ।।

हे महाविद्या स्वरूपे देवि ! सारी विद्यायें आपके ही विविध स्वरूप हैं। इसी प्रकार ६४ कलाएं जिनमें नृत्यवाद्य गायन प्रमुख हैं ये तेरे ही अन्तर्गत हैं।

अनेक प्राकृतिक शक्तियों के फलस्वरूप उसके कर्मों के अनुसार अनेक नाम तथा स्वरूप होते हुए भी यह महामाया एक ही है जो पराशक्ति स्वरूपा है। जब देवासुर संग्राम में शुम्भ ने देवी से कहा :—

"अन्यासां बलमाश्रित्य युद्ध्यसे यातिमानिनी"

आप दूसरी शक्तियों की सहायता से विजयिनी हो रही हो इसके उत्तर में महामाया कहती है :—

एकेवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।
पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः॥

मैं महाशक्ति रूप में सारे जगत् में एक ही हूं। मेरे अतिरिक्त कोई दूसरी शक्ति नहीं है। देख यह मेरी विभूति स्वरूप शक्तियाँ मुझ में ही समा गईं। मैं एक में अनेक, और अनेक में एक हूँ। "ब्रह्मवैवर्त पुराण" में स्वयं विष्णु ने इसे सृष्टिकर्त्री पराप्रकृति विष्णुमाया कहा है।

सृष्टिकर्त्री च प्रकृतिः सर्वेषां जननी परा।
ममतुल्या च मन्माया तेन नारायणी स्मृता॥

महाभारत के अनुसार पाण्डवों ने भी अपने कष्ट

निवारणार्थं महिषासुर मर्दिनी की उपासना की थी। श्रीमद्भागवत् में भी कात्यायनी रूप में शक्ति पूजा का विधान मिलता है।

मार्कण्डेय पुराण में भक्तवत्सला का वर्णन मिलता है कि जगन्माता पराशक्ति किस प्रकार अपने शत्रुओं का भी उद्धार करती है। प्रसंग इस प्रकार है :—

पूर्वकाल में रम्भासुरी ने तप करके त्रिलोकविजयी पुत्र को पाया। बड़ा होकर उसने सब देवताओं को जीत कर इन्द्र पद प्राप्त किया। तब पराजित होकर देवताओं ने यह सारा वृत्तान्त विष्णु तथा महेश को सुनाया जिससे वे बहुत क्रोधित हुए। तत्क्षण उनसे एक तेजोराशि निकली। साथ ही और देवताओं के शरीरों से भी तेजोराशि का प्रादुर्भाव हुआ। ये सारे तेजोपुंज एक हो गये। उस एकीभूत तेजः पुंज से सर्वतेजोमयी मूर्ति महाशक्ति महालक्ष्मी का प्रादुर्भाव हुआ। उसने अपने खड़ग से महिषासुर-माहिष्यशिरः (भैंसा सिर) को काट कर तथा उससे महिषासुर का असली रूप प्रकट होने पर उसे नाग पाश से बांध कर अपने बायें अंगूठे से दबाया जिसके प्रभाव से उसको तत्क्षण ज्ञान-प्राप्ति हुई। उसने जगन्माता महालक्ष्मी से प्रार्थना की, "हे महालक्ष्मी ! जिससे मैं यज्ञभाग ग्रहण करता हुआ आपके चरणों में निवास करूँ और भोग मोक्ष का भागी बनूं वह

वर मुझे प्रदान कीजिए।" देवी ने 'तथास्तु' कह कर महिषासुर से कहा—तुम सदा मेरे चरणों के समीप रहोगे, जहाँ-जहाँ मेरी पूजा होगी वहाँ-वहाँ तुम्हारी भी पूजा होगी। यही बात दुर्गासप्तशती मध्यम चरित्र (अध्याय दो, तीन, चार) में वर्णित है।

केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य
रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा
त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि॥

हे देवी। आपका पराक्रम अतुल है। आपके शत्रु संहारक रूप का क्या कहना। आपका मन सदा कृपालु होता हुआ युद्ध में परमनिष्ठुर है। पर शरणागतों की रक्षा के लिए आप सदा तत्पर हैं। इस प्रकार यह दोनों भाव परस्पर विरोधी होते हुए भी आपके बिना और किस में पाये जाते हैं? आप ही में है, और किसी में नहीं।

आदि शक्ति महालक्ष्मी

सर्वत्र शक्तितत्व की व्याप्ति होते हुए भी यह शंका होती है कि आद्याशक्ति कौन है? दुर्गासप्तशती के प्राधानिक रहस्य में निश्चयपूर्वक कहा गया है :—

'सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी"।

आद्या शक्ति महालक्ष्मी है जो सत्व, रज, तम भेद से सगुण-निर्गुण, दोनों रूपों में सर्वत्र व्याप्त है, जिसे मूल प्रकृति भी कहते हैं। दुर्गा सप्तशती के आधार पर इसी के चण्डिका रूप में दस अवतार माने गये हैं :—

१. महाकाली
२. महालक्ष्मी
३. महा सरस्वती
४. नन्दा
५. रक्तदन्तिका
६. शताक्षी
७. शाकम्भरी
८. दुर्गा
९. भीमा
१०. भ्रामरी

इन सब अवतारों का वर्णन दुर्गा सप्तशती में हुआ है।

संसार की शून्यता को देखकर उसके भौतिक विकास के लिए महालक्ष्मी ने दूसरा तमोगुण रूप धारण किया जो महाकाली कहलाई। यह महालक्ष्मी की ही मायामयी मूर्ति है। अपने कार्यों के अनुसार उसके भी १० नाम हैं, वे हैं :—

१. महामाया
२. महाकाली
३. महामारी
४. क्षुधा
५. तृषा
६. निद्रा
७. तृष्णा
८. एकवीरा
९. काल रात्रि
१०. दुरत्यया

१. त्रिदेव जीतने के कारण यह महामाया कहलायी।
२. महाप्रलय में सब को ग्रसने के कारण महाकाली।
३. सर्वसंहारिणी होने के कारण महामारी।
४. साधक की अविद्या दूर करने के कारण क्षुधा।
५. भक्तों के अविद्या दोष पीने के कारण तृषा।
६. विष्णु को भी योगनिद्रा में सुलाने के कारण निद्रा।
७. भक्तकृत भक्ति रस पीने के इच्छुक होने के कारण तृष्णा।

८. जगत् में एक पराक्रमशीला होने के कारण एकवीरा।

९. काल की भी नाशक होने के कारण कालरात्रि।

१०. इसकी माया अलङ्घ्य होने के कारण दुरत्यया कहलाती है।

फिर यही मूल प्रकृति संसार के बौद्धिक विकास के लिए सरस्वती रूप में परिणत हो गई। इससे भी दस नाम पड़ गये। वे इस प्रकार हैं :—

१. महाविद्या
२. महावाणी
३. भारती
४. वाग्
५. सरस्वती
६. आर्या
७. ब्राह्मी
८. कामधेनु
९. वेदगर्भा
१०. धीश्वरी

१. विद्या द्वारा सब अनर्थ दूर करने के कारण महा-विद्या ।

२. वाणीस्वरूपा होने के कारण महावाणी ।

३. आदित्य सम्बन्धिनी होने के कारण भारती ।

४. वाणी की अधिष्ठात्री होने के कारण वाणी ।

५. ज्ञान ज्योति दात्री होने के कारण सरस्वती ।

६. तत्व ज्ञानमयी होने के कारण आर्या ।

७. सर्वव्यापी तथा अप्रमेय होने के कारण ब्राह्मी ।

८. अभीष्टदात्री होने के कारण कामधेनु ।

९. वेद मंत्र रूपा होने के कारण वेदगर्भा ।

१०. बुद्धि प्रेरिका होने के कारण धीश्वरी कहलाती है ।

सृष्टि का आरम्भ :—

इसी त्रिगुणात्मिका महालक्ष्मी के राजसस्वरूप से ब्रह्मा—सरस्वती, सात्विक स्वरूप से विष्णु-लक्ष्मी, और तामस स्वरूप से महाकाली—रुद्र उत्पन्न हुए । अर्थात् प्रत्येक ने प्रकृति पुरुषात्मक दो-दो रूप धारण किए—

"एवं युवतयः सद्यः पुरुषत्वं प्रपेदिरे ।

फिर मूल प्रकृति महालक्ष्मी ने ब्रह्मा को सरस्वती, विष्णु को लक्ष्मी तथा शंकर को गौरी पत्नी रूप में दी। सपत्नीक ब्रह्मा को सृष्टि का, सपत्नीक विष्णु को पालन का तथा सपत्नीक महेश को संहार का अधिकार भी दिया। इसके बाद ब्रह्मा और सरस्वती ने सृष्टि रचना के लिए एक अण्डा (हिरण्यगर्भ) उत्पन्न किया जो ब्रह्माण्ड कहलाया। इस अण्डे को गौरी और रुद्र ने दो खण्डों में विभक्त किया। फिर इसी अण्डे से प्रधानादि कार्य स्वरूप सारा चेतन और अचेतन जगत उत्पन्न हुआ।

वैकृति रहस्य में इसके विपरीत महालक्ष्मी की विकृति यह तीनों रूप हैं। अर्थात् तामसी महाकाली, राजसी महालक्ष्मी तथा सात्विकी सरस्वती। मूल प्रकृति महालक्ष्मी से ब्रह्मा लक्ष्मी, महाकाली से रुद्र सरस्वती तथा महासरस्वती से विष्णु गौरी उत्पन्न हुए। महाकाली मधुकैटभनाशार्थ अवतीर्ण हुई, महालक्ष्मी महिषासुर को नाश के लिए, तथा महा सरस्वती शुंभ तथा निशुंभ के संहार के लिए अवतीर्ण हुई।

प्राधानिक रहस्य में वर्णित मूल प्रकृति महालक्ष्मी की सात्विकी मूर्ति सरस्वती विष्णु और गौरी की जननी है। महालक्ष्मी की तामसी मूर्ति महाकाली रुद्र और सरस्वती की जननी है। महालक्ष्मी की राजसी मूर्ति ब्रह्मा और लक्ष्मी की जननी है। इस प्रकार व्यष्टि रूप में तीन रूप

धारण करके मूल प्रकृति महाशक्ति जो परंब्रह्म से अभिन्न है, वास्तव में एक ही है। परंब्रह्म का व्यापक स्वरूप शास्त्रों में इस प्रकार वर्णन किया गया है :—

शक्ति सम्पन्न परंब्रह्म का स्वरूप

षाड्गुण्यं तत्परं ब्रह्म स्वशक्ति परिबृंहितम् ।

(अहिर्बुध्न्य संहिता)

ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, बल, वीर्य, तैज आदि से व्याप्त परंब्रह्म सर्वव्यापक एवं अद्वितीय दुःखरहित सत्-चित् आनन्द स्वरूप है। इस लक्षण से परंब्रह्म की अनन्त शक्तिमत्ता का ज्ञान होता है, जो शक्ति परंब्रह्म से अभिन्न है, जिस प्रकार चांद से चांदनी अभिन्न है। अतः परंब्रह्म और शक्ति एक ही हैं भिन्न नहीं। जिस प्रकार प्रशान्त सागर में पहले बुलबुले उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार परंब्रह्म में ज्ञानादि षड्गुणों का उदय होता है, जो सुदर्शन तत्त्व या इच्छाशक्ति कहलाती है। इसी से जगत्सृष्टि होती है।

जीव स्वरूप

यद्यपि जीव भी शक्तिमान् है परन्तु सृष्टिकाल में प्रभु उसकी शक्ति आच्छादित करता है।

आणवमल

यही आच्छादनावस्था अर्थात् अपूर्णता का अनुभव

आणवमल कहलाता है। इस मल से जोव जन्मजन्मान्तरों में भटकता है ।

छत्तीस तत्त्व

शक्ति सिद्धान्त और शैव सिद्धांत में सृष्टि निर्माण के छत्तीस तत्त्व माने गए हैं। परुशुराम कल्प सूत्र में "षट्त्रिंशत् तत्त्वानि विश्वम् ।" (छत्तीस तत्त्व ही जगत् है) जिनके नाम निम्नलिखित हैं :—

(१) शिवः	(२) शक्ति
(३) सदाशिवः	(४) ईश्वर
(५) शुद्धविद्या	(६) माया
(७) कला	(८) विद्या
(९) राग	(१०) काल
(११) नियति	(१२) पुरुष
(१३) प्रकृति	(१४) अहंकार
(१५) बुद्धि	(१६) मन

(१७—२२) पाँच ज्ञानेन्द्रिय

(२३—२६) पाँच कर्मेन्द्रिय

(२७—३२) रूप आदि पाँच विषयेन्द्रियँ

(३२—३६) आकाशादि पाँच महाभूत ।

तत्त्व का स्वरूप

जो सब देश कालों में व्याप्त है। वह तत् है। जो परंब्रह्म का पर्याय या दूसरा नाम है उसी तत् शब्द का भाव या धर्म तत्त्व कहलाता है। यह तत्त्व परम शिव से पृथ्वी तत्त्व तक छत्तीस पदार्थ हैं। इन्हीं छत्तीस पदार्थों को तत्त्व-ज्ञानियों ने तीन भागों में विभक्त किया है।

मुख्य तीन तत्त्व :

(१) आत्म तत्त्व (२) माया तत्त्व (३) शिव तत्त्व।

(१) आत्म तत्त्व—इसमें पृथ्वी तत्त्व से माया तत्त्व तक इक्कीस तत्त्व आते हैं।

(२) माया तत्त्व या विद्यातत्त्व—इसमें शुद्ध विद्या, ईश्वर, सदाशिव, तीन तत्व सन्निविष्ट हैं।

(३) शिवतत्त्व—इसमें शिव शक्ति का समावेश मिलता है।

तान्त्रिक इन्हीं तीन तत्त्वों के प्रतीक रूप मंत्रों से आचमन करके अपने को सत्-चित्-आनन्द ब्रह्मस्वरूप मानते हैं। इन मन्त्रों के क्रियात्मक रूपों का विवरण संक्षिप्त रूप में नीचे दिया जाता है। जब शिव अपने स्वरूप में केवल था तब उसे अकस्मात् सृष्टि करने के लिए इच्छाशक्ति का उदय हुआ, फिर इच्छाशक्ति से ज्ञानशक्ति और ज्ञान

शक्ति से क्रियाशक्ति का उदय हुआ। इन्हीं तीन शक्तियों के सहयोग से सूक्ष्म सृष्टि तथा शब्द-शक्ति उत्पन्न हुई। ऐसा "सृजनेच्छायुक्त रूपोपाधि विशिष्ट सदाशिवं," यही शिवतत्त्व है।

श्री भास्कर राय ने "सौभाग्य भास्कर" ग्रंथ में शिव-तत्त्व के विषय में कहा है :—जब प्रलयकाल में सदाशिव ने सूक्ष्मावस्था में जगत् को अपने में लीन किया तो उस समय विश्वरूपिणी चित् शक्ति भी शिव में लीन हो गई, इस अवस्था में वह निष्क्रिय हो गया, ऐसा गुणातीत ब्रह्म ही परम शिव है। जब सृष्टि की रचना विषयक 'प्रथम स्फूर्ति' में शक्ति का विकास हुआ ऐसा शक्तियुक्त परमशिव ही प्रथम शिव तत्त्व है।

शक्ति तत्त्व :—

शिव की विश्वसृजन शक्ति ही शक्ति तत्त्व है। निर्गुण शिव जब 'बहुस्याँ प्रजायेयम्' अर्थात् मैं एक से अनेक हो जाऊं ऐसी इच्छाशक्ति से युक्त सृष्टयुन्मुख शिव ही शक्ति तत्त्व है।

काश्मीरिक शैवदर्शन में परमशिव के हृदय में जब सृजनात्मक इच्छा पैदा होती है, उसके दो भेद माने जाते हैं। एक 'शिवरूप' दूसरा 'शक्तिरूप', प्रथम अवस्था में शिव प्रकाश स्वरूप है, दूसरी अवस्था में शक्ति 'विमर्श रूपिणी'

है। इसी विमर्श शक्ति की स्फूर्ति से सृष्टि, स्थिति तथा संहार की प्रक्रिया होती है। इसी विमर्श शक्ति को चित्, चैतन्य, संवित्, परावाक् आदि नामों से पुकारा जाता है। प्रभा के दो रूपों में अहमंश और इदमंश—(अहं अंश और इदं अंश) हैं। अहं अंश शिव का प्रकाश है तथा इदं अंश शक्ति का विमर्श है। विमर्श से ही प्रकाश का अनुभव होता है और प्रकाश की स्थिति में ही विमर्श की व्यवस्था होती है। इसी विचार को परमानन्द तन्त्र में इस प्रकार वर्णन किया गया है :—

"प्रपंचं वासना रूपा शक्तिरित्यभिधीयते।
निष्प्रपंच चिदेकात्मा शिवतत्त्वं समीरितम्॥"

जब शिव को 'एकोहं बहस्यां' इस प्रकार प्रपंच रचनात्मक इच्छा पैदा होती है, वही शक्ति तत्त्व है। जिस समय शिव चिदानन्द रूप में ही रमता है अर्थात् निर्विकल्प है, वह शिव तत्त्व कहलाता है—जैसे आईने के बिना मुख-मण्डल का रूप दिखायी नहीं देता, इसी प्रकार विमर्श के बिना प्रकाश का स्वरूप नहीं हो सकता। जिस प्रकार शहद में मिठास नित्य होते हुए भी वह अपने मिठास को चख नहीं सकता, इसी प्रकार शक्ति के लीलाभूत होने पर शिव को प्रकाश स्वरूप का ज्ञान नहीं होता, इसी भाव को शंकराचार्य ने "सौन्दर्य लहरी" के इस श्लोक में वर्णन किया है :—

"शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं ।
न चेदेवंदेवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ।।"

(शक्तियुक्त शिव ही सर्वथा समर्थ है। शक्ति के बिना वह हिल भी नहीं सकता।) इसी का सुन्दर उदाहरण 'कामकला विलास' में भी मिलता है।

जिस प्रकार कोई राजा दर्पण में अपने प्रतिविम्ब को देखकर अपने मुख सौन्दर्य को पूर्णरूप से जानता है, उसी प्रकार शिव भी अपनी विमर्शमयी शक्ति से अपने प्रकाशमय रूप को जान सकता है। जो प्रकाश ही विमर्शात्मक है और विमर्श ही 'प्रकाशस्वरूप है' अतः शिव शक्ति के बिना और शक्ति शिव के बिना ठहर नहीं सकती।

शिव दृष्टि में कहा गया है :—

"न शिवः शक्ति रहितो न शक्तिर्व्यतिरेकिणी ।

सदाशिव तत्त्व

अपनी इच्छा में पैदा हुआ जगत् जिस शिव में अहं रूप में ढ़ांपा रहता है, यही सारे जगत् का अनुग्रहकारक सदाशिव तत्त्व माना गया है। अर्थात् विश्वेश्वर प्रभु विश्व के साथ अभेद मानकर विश्व को निजात्मस्वरूप अन्तर्निमेष मानता है ऐसा तत्त्व सदाशिव तत्त्व है।

ईश्वर तत्व

शिवतत्त्व के बहिरुन्मेष में इदंता का प्राधान्य ईश्वर तत्व है। इसी तत्त्व को अहंता के रूप में बिन्दु कहा गया है।

शुद्धविद्या तत्त्व

'मैं' जगत् ही हूं ऐसी सदाशिव वृत्ति के निर्मल भाव का नाम शुद्ध विद्या या विद्या तत्त्व है। शिब तत्व में अहं विमर्श और सदाशिव तत्व में इदं विमर्श है. वे इदंता और अहंता से दूर नहीं रह सकते अपितु आपस में सम्बद्ध हैं, इनके मिलन की अवस्था में 'इदंता' उसका स्वरूप है जिसे वह 'अहंता' में देखता है ऐसा अनुभव ही शुद्ध विद्या का स्वरूप है।

माया तत्व और उसके पाँच कंचुक

ईश्वर की वह वृत्ति जिसमें वह जगत् को अपने से भिन्न समझता है, इस भेद विषयिणी वृत्ति को 'माया तत्व' कहा जाता है।

माया की उपलब्धियां या कंचुक पांच हैं :—

अविद्या, कला, राग, काल और नियति।

अविद्या

शुद्ध विद्या का विपरीत तत्त्व अविद्या है। इसमें विद्या

तत्त्व आच्छादित रहता है। जिसके कारण से जीव अल्पज्ञ होता है, अतः यह अविद्या जीव में होती है। शिव स्वयं सर्वज्ञ है और जीव उसी का अंश है अतः उसे सर्वज्ञता शक्ति संकुचित होती है। इसी अल्पज्ञता का नाम अविद्या है।

कला

ईश्वर सर्वकतृत्व शक्ति युक्त है, परन्तु जीव उसका अंश होने के कारण, उसका कर्तृत्व भाव संकुचित करता है उसमें थोड़ी कर्तृत्व शक्ति होती है जो कला कहलाती है।

राग

परमात्मा नित्यतृप्त है परन्तु जीव में तृप्ति अपूर्ण है। तृप्ति अपूर्ण होने के कारण अतृप्त होकर भोग्य विषयों पर सदा आसक्त रहता है यही अतृप्ति राग तत्त्व है।

काल

शिव की नित्यता शक्ति षडभाव विकार योग से संकुचित होने के कारण काल नाम से कही जाती है। क्योंकि जो सांसारिक नित्यता होती है, उसमें षडभाव विकार योग से आच्छादन होता है जैसे :—(१) वस्तु रूप में है (२) वह उत्पन्न होती है (३) वह वृद्धि प्राप्त करती है (४) वह दूसरी अवस्था में बदल जाती है (५) उसका क्षय होने लगता है (६) वह नष्ट होती है। अर्थात् परमेश्वर की नियति शक्ति कालतत्व से संकुचित होकर जन्म मृत्यु प्रदान

से जीव को अनित्य तथा सीमित करता है। यह काल सूर्य चंद्र की गति से क्षण, घटिका, मास, वर्ष, युग, कल्प के रूप में बांटा गया है।

नियति

परमेश्वर की स्वतंत्रता शक्ति जो संकुचित होकर कार्याकार्य में नियन्त्रित करती है उसी को नियति शक्ति कहते हैं।

पुरुष तत्त्व

माया से उत्पन्न हुये पूर्वोक्त काल, काम, राग, कला, अविद्या आदि पांच कुंचकों (आवरणों) का आश्रय रूप तत्त्व जीवतत्त्व माना गया है।

प्रकृति तत्त्व

सत्व, रज, तमोगुणों की साम्यावस्था प्रकृति है, इसका ही दूसरा नाम चित् है।

मनस्तत्त्व

रजोगुण प्रधान अन्तःकरण ही मनस्तत्त्व है, जो संकल्प विकल्प का हेतु है।

बुद्धि तत्त्व

सत्त्व प्रधान अन्यःकरण ही बुद्धितत्त्व है जो निश्चय ज्ञान की हेतु है।

अहंकार तत्त्व

तमोगुण प्रधान अन्त:अकरण का नाम अहंकार तत्त्व है, इसमें अहं का प्राधान्य होता है, जो भेदभाव का कारण है।

पांच ज्ञानेन्द्रिय

श्रोत्र तत्त्व :—शब्द ग्राहक इन्द्रिय।

त्वचा तत्त्व :—स्पर्श ग्राहक इन्द्रिय।

चक्षु तत्त्व :—रूप ग्राहक इन्द्रिय।

जिह्वातत्त्व :—रस ग्राहक इन्द्रिय।

घ्राणतत्त्व :—गन्ध ग्राहक इन्द्रिय।

पांच कर्मेन्द्रिय

वाक् तत्त्व :—वाणी का इन्द्रिय।

पाणि तत्त्व :—पकड़ने छोड़ने का इन्द्रिय।

पाद तत्त्व :—आने जाने का इन्द्रिय।

पायु तत्त्व :—मल त्यागने का इन्द्रिय।

उपस्थ तत्त्व :—मैथुन का इन्द्रिय।

पांच तन्मात्र

शब्द तत्त्व :—सूक्ष्माकाश कानों से ग्राह्य शब्द।

स्पर्श तत्त्व :—सूक्ष्मवायु रूप चमड़े से ग्राह्य स्पर्श।

रूप तत्त्व :—सूक्ष्मतेजो रूप आंखों से ग्राह्य रूप।

रस तत्त्व :—सूक्ष्मजल रूप जीव से ग्राह्य रस।

गंध तत्त्व :—सूक्ष्म पृथ्वी रूप नाक से ग्राह्य गन्ध।

पंचभूत

आकाश तत्त्व :—आकाशात्मक तत्त्व ।

वायु तत्त्व :—सदागतिशील तत्त्व ।

तेज तत्त्व :—उष्ण शक्त्यात्मक तत्त्व ।

जल तत्त्व :—द्रवत्वप्रधान तत्त्व ।

पृथ्वी तत्त्व :—काठिन्यगुणात्मक तत्त्व ।

यह सब तत्त्व परम शिव की चित् शक्ति का विकास हैं।

चित् शक्ति का स्वरूप

शैव और शाक्त दर्शन, दोनों छत्तीस तत्त्व स्वरूप जगत् को परम शिव की चित् शक्ति का उल्लास मानते हैं। शैव दर्शन में इसी चित् शक्ति के उल्लास का नाम विमर्श है अर्थात् जो परमशिव की स्वतंत्रता शक्ति स्वतः प्रकाश रूप है, यही नित्य है सत्य है। जिसे शाक्त दर्शनों में पराशक्ति कहा गया है जो चित् शक्तिरूप में सर्वत्र व्याप्त है।

"अनया व्याप्तमखिलं जगत्स्थावर जंगमम् ।"

(दुर्गा सप्तशती)

यद्यपि इसके विपरीत अद्वैतबाद में 'ब्रह्मसत्यं—जगन्मिथ्या' कहकर उन्होंने ३६ तत्त्वात्मक मायामय जगत् को मिथ्या माना है जो माया ब्रह्मशक्ति स्वरूपा है। जब

ब्रह्म सत्य है नित्य है तब उसका कार्यस्वरूप जगत् कैसे अनित्य हो सकता है।

वेद वाक्य की पूर्ति है—'जीवो ब्रह्मैव नापरः' इसका निर्णय करने से यह शंका समाप्त होती है।

क्षेमराज ने प्रत्यभिज्ञा हृदय के पहले सूत्र में कहा है—

'चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः।'

विश्वसृष्टि का एकमात्र कारण चित् शक्ति है अर्थात् विश्वरूप सदाशिव से स्थूल पृथ्वी तक सारे तत्वों की उत्पत्ति तथा लयात्मक (प्रकाश-विमर्श) प्रक्रिया के विषय में चित् शक्ति ही मूल कारण है। यही चित्रूपा पराशक्ति सदाशिव या परंब्रह्म से अभिन्न है। परमशिव की चित्-शक्ति के विकास में जगत् का विकास होता है और उसके संकोच में जगत् लयोन्मुख हो जाता है। चित् शक्ति सदा प्रकाश रूप है। उसका प्रकाश ही जगत् का विकास है। यद्यपि जगत् चित्शक्ति से भिन्न प्रतोत होता है फिर भी यह दोनों अभिन्न हैं इसका समाधान क्षेभराज ने प्रत्यभिज्ञा हृदय के दूसरे सूत्र में दिया है।

चित् शक्ति और विश्व का अभेद

"स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति।"

(चित् शक्ति अपने स्वरूप रूपी दीवार पर जगत् का उन्मेष करती है) यद्यपि जगत् चित् शक्ति से भिन्न सा प्रतीत होता है तथापि जिस प्रकार दर्पण में नगर का प्रतिबिम्ब अभिन्न होता हुआ भी भिन्न-सा प्रतीत होता है उसी प्रकार स्वप्रकाश चित् ज्योति का ही भिन्न रूप में प्रकट होना चित् शक्ति का अवस्था विशेष ही है, परन्तु उससे भिन्न नहीं, क्योंकि विश्वरूप में जो कुछ दिखाई देता है वह चित् शक्ति का ही रूप है। अतः चित् शक्ति और जगत् अभिन्न है।

गुणातीत शिव-शक्ति को परमशिव कहते हैं

ऊपर कहे ३६ तत्त्वों से परे एक पदार्थ है जो विश्व व्यापक होकर भी विश्व से अलग है। शिव तत्त्व से पृथ्वी तत्व तक ३६ तत्व विश्व है। जिस परम तत्त्व से ३६ तत्वात्मक विश्व का उदय होता है उसी बीज रूप तत्व को परा शक्ति कहते हैं। क्योंकि शिव सदा शक्तियुक्त होता है। जिस समय वह अन्तर्मुख भाव में होता है तो वह शिव है। बहिर्मुख भाव में विश्व प्रपंचात्मक उसी शिव को शक्ति कहा जाता है।

'व्यक्तं सर्वमुमारूपमव्यक्तं तु महेश्वरम्।'

शिव में अन्तर्मुखभाव और बहिर्मुखभाव नित्य हैं। शिव तत्व में शक्तिभाव गौण है और शिवभाव प्रधान है

और शक्ति तत्व में शिवभाव गौण है और शक्तिभाव प्रधान है। परन्तु जहां दोनों शिव-शक्ति एकरस होकर अभागीभाव में एक हैं वही साम्यावस्था या तत्त्वातीत अवस्था है। इसी परम तत्व को शैव परम शिव और शाक्त पराशक्ति कहते हैं। परम स्वतंत्र विमर्श शक्तियुक्त शिव अपनी इच्छाशक्ति से जगत् का विकास करता है।

चरम तत्व

इसी चरमतत्त्व या परमतत्व को भिन्न-भिन्न रुचि के साधक रुचिभेद से पुरुषभाव में या स्त्रीभाव में मानते हैं। प्रत्यभिज्ञा दर्शन का परमशिव त्रिपुरासिद्धान्त की षोडशी या ललिता, वैष्णव मत का श्रीकृष्ण तथा राधा यह सारे सत्-चित्-आनन्द स्वरूप इसी परम तत्व के भिन्न-भिन्न प्रतीक हैं।

वस्तुतः वह सच्चिदानंद परमात्मा न पुरुष है न स्त्रा अपितु उनका अभेदात्मक सामंजस्य है, जो स्वतः प्रकाश रूप होने के कारण अखण्ड है सौन्दर्ययुक्त है, जिसके सौन्दर्य के कणमात्र से सारा संसार जगमगाता है।

'तस्य भासः सर्वमिदं विभाति।'

(कठोप०)

वही परमतत्व अपनी इच्छा से प्रस्फुरित होकर स्वयं

उसका आस्वाद लेता है, इस प्रकार परम शिव का अपना प्रतिबिम्ब ही विश्व है।

श्री नटनाथानन्द ने "चिद्वल्ली काम कला विलास टीका" में इसके विषय में एक दृष्टांत देकर इसका तत्त्व इस प्रकार समझाया है :—

जैसे कोई सुन्दर आकृति वाला राजा पास पड़े आईने में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर यह समझता है कि यह 'मैं' हूँ, इस प्रकार परमेश्वर भी अपनी स्वाधीन प्राकृतिक शक्ति को देख कर उसे अपना ही स्वरूप समझता है कि मैं पूर्ण हूँ जिसे शैव में अहन्ता कहते हैं। ऐसे ही इदन्ता की अवस्था में विमर्श शक्ति के अभिन्नता के कारण इस अवस्था में वह विश्वप्रपंच को उत्पन्न करता है जो चराचर ब्रह्माण्ड कहलाता है। ऐसा प्रकाश विमर्श स्वरूप शिव शक्ति का सामंजस्य विश्व सृष्टि का मूल कारण है।

ब्रह्माद्वैत (वेदान्त) और ईश्वराद्वैत (शैव में) भेद

श्री शंकराचार्य तथा शैवाचार्यों के द्वारा प्रसारित अद्वैत, दोनों ही पूर्ण अद्वैत के प्रतिपादक है परन्तु दोनों में कुछ भेद है। ब्रह्माद्वैत (वेदान्त) में निर्मल, निर्विकार ब्रह्म में कर्तृत्वादि पंचकृत्यों के विषय में वर्णन नहीं है किन्तु शिवाद्वैत (शैव) में परम शिव में पराशक्ति सम्पन्नता कही

गई है। पराशक्ति परमशिव की सर्वकर्तृता की द्योतिका है वह उसकी स्वतंत्र शक्ति है अतः परम शिव सृष्टि स्थिति, संहार, विधान और अनुग्रह पंचकृत्यों के सम्पादक हैं। ब्रह्माद्वैत में परब्रह्म अकर्ता अभोक्ता तथा निर्विकार माना गया है। परन्तु शबल ब्रह्म अवस्था में सृष्ट्यादि उसी पर अध्यस्त मानी गई है। इसका उपकरण माया तथा अविद्या हैं। कारण ब्रह्म अपने ही स्वातंत्र्य (एकोऽहं बहुस्याम्) से कार्य-ब्रह्म में पर्यवसित होता है जिसे विश्व या जगत् कहते हैं। शिवाद्वैत (शैव) में भी अज्ञान और माया का अस्तित्व है जो परम शिव का स्वेच्छाधृत रूप है। जैसे नट विभिन्न भूमिकाओं में विविध रूप धारण करता है उसी प्रकार परम शिव भी अपने स्वातंत्र्य से अपने रूप को ढ़ांपता है और प्रकट करता है। जैसे सूर्य अपनी ही उष्णता से उत्पन्न मेघ से अपने को ढ़ाँप कर स्वयं अनावृत रहता है, उसी प्रकार परमशिव अथवा परब्रह्म की माया-शक्ति आदि उसी को लीलापरक अवस्था है अर्थात उसी की लीला मात्र है। अतः माया केवल प्रतिबिम्ब रूप है अर्थात् चित् शक्ति के उल्लास से परमशिव अथवा पर-ब्रह्म ही जीव-जगत् रूप में प्रतिबिंबित होता है क्योंकि वह पूर्ण स्वतंत्र है। वेदान्त में जीव, जगत् और ईश्वर का विश्लिष्ट विचार है तथा काश्मीर शैव में नट, शक्ति और

उसका आस्वाद लेता है, इस प्रकार परम शिव का अपना प्रतिबिम्ब ही विश्व है।

श्री नटनाथानन्द ने "चिद्वल्ली काम कला विलास टीका" में इसके विषय में एक दृष्टांत देकर इसका तत्त्व इस प्रकार समझाया है :—

जैसे कोई सुन्दर आकृति वाला राजा पास पड़े आईने में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर यह समझता है कि यह 'मैं' हूँ, इस प्रकार परमेश्वर भी अपनी स्वाधीन प्राकृतिक शक्ति को देख कर उसे अपना ही स्वरूप समझता है कि मैं पूर्ण हूँ जिसे शैव में अहन्ता कहते हैं। ऐसे ही इदन्ता की अवस्था में विमर्श शक्ति के अभिन्नता के कारण इस अवस्था में वह विश्वप्रपंच को उत्पन्न करता है जो चराचर ब्रह्माण्ड कहलाता है। ऐसा प्रकाश विमर्श स्वरूप शिव शक्ति का सामंजस्य विश्व सृष्टि का मूल कारण है।

ब्रह्माद्वैत (वेदान्त) और ईश्वराद्वैत (शैव में) भेद

श्री शंकराचार्य तथा शैवाचार्यों के द्वारा प्रसारित अद्वैत, दोनों ही पूर्ण अद्वैत के प्रतिपादक है परन्तु दोनों में कुछ भेद है। ब्रह्माद्वैत (वेदान्त) में निर्मल, निर्विकार ब्रह्म में कर्तृत्वादि पंचकृत्यों के विषय में वर्णन नहीं है किन्तु शिवाद्वैत (शैव) में परम शिव में पराशक्ति सम्पन्नता कही

गई है। पराशक्ति परमशिव की सर्वकर्तृता की द्योतिका है वह उसकी स्वतंत्र शक्ति है अतः परम शिव सृष्टि स्थिति, संहार, विधान और अनुग्रह पंचकृत्यों के सम्पादक हैं। ब्रह्माद्वैत में परब्रह्म अकर्ता अभोक्ता तथा निर्विकार माना गया है। परन्तु शबल ब्रह्म अवस्था में सृष्ट्यादि उसी पर अध्यस्त मानी गई है। इसका उपकरण माया तथा अविद्या हैं। कारण ब्रह्म अपने ही स्वातंत्र्य (एकोऽहं बहुस्याम्) से कार्य-ब्रह्म में पर्यवसित होता है जिसे विश्व या जगत् कहते हैं। शिवाद्वैत (शैव) में भी अज्ञान और माया का अस्तित्व है जो परम शिव का स्वेच्छाधृत रूप है। जैसे नट विभिन्न भूमिकाओं में विविध रूप धारण करता है उसी प्रकार परम शिव भी अपने स्वातंत्र्य से अपने रूप को ढ़ांपता है और प्रकट करता है। जैसे सूर्य अपनी ही उष्णता से उत्पन्न मेघ से अपने को ढ़ाँप कर स्वयं अनावृत रहता है, उसी प्रकार परमशिव अथवा परब्रह्म की माया-शक्ति आदि उसी को लीलापरक अवस्था है अर्थात उसी की लीला मात्र है। अतः माया केवल प्रतिबिम्ब रूप है अर्थात् चित् शक्ति के उल्लास से परमशिव अथवा पर-ब्रह्म ही जीव-जगत् रूप में प्रतिबिंबित होता है क्योंकि वह पूर्ण स्वतंत्र है। वेदान्त में जीव, जगत् और ईश्वर का विश्लिष्ट विचार है तथा काश्मीर शैव में नट, शक्ति और

शिव का। अतः शंकर वेदान्त और काश्मीर शैव में केवल प्रक्रिया भेद है प्रकृत भेद नहीं। माया अथवा शक्ति, ब्रह्म अथवा शिव की परिचायिका है।

त्रिपुरा सिद्धान्त

त्रिपुरा सिद्धान्त के अनुसार, पराशक्ति त्रिपुरसुन्दरी से ही सर्वप्रथम 'शब्द' एवं मूलभूत तत्त्वों की उत्पत्ति हुई है जिनमें परम तत्व शिव है जो प्रकाश और विमर्श स्वरूप है। विमर्श रूपिणी पराशक्ति की स्फूर्ति रूप में जब शिव ने प्रकाश रूप से प्रवेश किया तब बिन्दु का प्रादुर्भाव हुआ। शिव में विमर्शात्मक शक्ति के प्रवेश से तत्काल नारी तत्त्व रूप नाद उत्पन्न हुआ। इन दोनों नाद बिन्दु के संयोग से शिव अर्धनारीश्वर कहलाए जिससे 'काम-तत्त्व' उत्पन्न हुआ। इसमें पुं तत्त्व श्वेत और नारी तत्त्व रक्त है। इन दोनों स्त्री पुं तत्त्वों से कला की उत्पत्ति हुई जो वर्ण, पद, अर्थ के प्रतीक प्रकाश और विमर्श स्वरूप है। इस प्रकार उपरिवर्णित इसी कामकला अर्थात् नाद बिन्दु संयोग से ही परा प्रकृति रूपा त्रिजगज्जननी त्रिपुरसुन्दरी आविर्भूत हुई, जो आद्या शक्ति के रूप में ऊंकार के ऊपर नाद बिन्दु रूप में विराजमान है, वही साक्षात् अर्धनारीश्वर है;

सच्चिदानन्द विभवात् संकल्पात्परमेश्वरात् ।
आसीच्छक्तिस्ततो नादोनादद्विन्दुस्समुद्भवः ।।

(देवी भागवत)

इस अर्धनारीश्वर का कौन सा भाग पुरुष है और कौनसा स्त्री है, इसका वर्णन देवी भागवत् के निम्नलिखित श्लोक में किया गया है।

स्वेच्छायय: स्वेच्छयायं द्विधारूपो बभूवह ।
स्त्रीरूपो वामभागांशो दक्षिणांशः पुमान् स्मृतः ।

(देवी भागवत)

परम स्वतन्त्र, परमशिव ने अपनी इच्छा शक्ति से दो रूप धारण किये। वे वाम भाग में स्त्री और दक्षिण भाग में पुरुष बने, जो अर्धनारीश्वर का स्वरूप है जिसे शाक्त मत में कामेश्वर और कामेश्वरी कहते हैं।

'संवित्कामेश्वरः स्मृतः ।

शैव मत और शाक्त मत की सिद्धान्त समता

इस प्रकार शैव मत और शाक्त मत की सिद्धान्त समता यत्र तत्र पाई जाता है। दोनों शिव शक्ति का अभिन्न सम्बन्ध मानते हैं। भले ही उनकी उपासना पद्धति में कहीं कहीं भेद भी है।

शाक्त सिद्धान्त की ग्रन्थ रचना के समय इस सम्प्रदाय के आचार्यों ने 'शिव सूत्र' 'प्रत्यभिज्ञाहृदय' ईश्वर

प्रत्यभिज्ञा (विमर्शिनी) 'तंत्रा लोक' आदि शैव ग्रन्थों से प्रमाण लिये हैं।

इसी प्रकार उत्पलदेव, क्षेमराज, अभिनवगुप्त आदि शैवाचार्यों ने भी शाक्त सिद्धान्त के 'योगिनी हृदय', 'काम कला विलास, 'त्रिपुर सुन्दरी मन्दिर' आदि शाक्त ग्रन्थों से प्रमाण लिए हैं। इससे सिद्ध होता है कि दोनों सम्प्रदायों के आचार्य आपस में एक सिद्धान्त पर सहमत हैं।

त्रिपुरसुन्दरी या ललिता देवी

शैव शास्त्रों में तत्वातीत परम सत्ता ही परम शिव है, इसी प्रकार शाक्त सिद्धांत में यही परमसत्ता त्रिपुर-सुन्दरी या ललिताम्बिका नाम से पुकारी जाती है। 'त्रिक-दर्शन' का जो शिव तत्त्व या शक्ति तत्त्व है वही त्रिपुरा सिद्धांत की कामेश्वर और कामेश्वरी है। इन दोनों का सामंजस्य भाव ही त्रिपुरसुन्दरा है।

त्रिपुरसुन्दरी नाम रूप भेद

त्रिपुरा के उपासक चन्द्ररूप से उसकी उपासना करते हैं। चन्द्र की सोलह कलाएं होती है, जिनमें एक कला नित्यकला है जिसका उदयास्त नहीं होता है। यही अमृत कला या अमा कला कहलाती है। इस षोडश कलात्मक चन्द्रबिम्ब को नित्याषोडशिका भी कहते हैं जिसे नित्योदिता, अर ण्डा, अमृतस्वरूपा, महात्रिपुरसुन्दरी, ललिता, पराकला,

चिदेकरसा, श्री विद्या आदि नामों से अभिहित किया जाता है। यही षोडशी कला नित्य ज्योतिर्मय सहस्रदल कमल की कर्णिका में विराजित श्रीचक्रात्मक चन्द्रबिम्ब चिदानन्द-स्वरूपा है।

"षोडशी च कला ज्ञेया सच्चिदानन्द रूपिणी।"

सुभगोदय में इस षोडशी कला को सत्-चित् आनन्द स्वरूपिणी स्वयं त्रिपुरसुन्दरी ललिताम्बिका वर्णन किया है।

ज्ञान और भक्ति का समुन्नाय

शैव दर्शन और शाक्त दर्शन में अद्वैतवाद के साथ-साथ भक्तिवाद का भी परम मनोहर संगम पाया जाता है। शैवाद्वैत और शाक्ताद्वैत में यह बड़ी विशेषता है कि इन दोनों में केवल शुष्क ज्ञान ही नहीं अपितु भक्ति और ज्ञान का मधुर सामंजस्य भी मिलता है। वेदान्त की परमावस्था भक्ति से ही सिद्ध होती है। भगवान ने स्वयं कहा है—'भक्तिमान् मे प्रियो नरः' 'सेवायां' के आधार पर भाष्यकार शंकर ने भक्ति का लक्षण 'भक्तिरेव भजनम्' बताया है। विवेक चूडामणि में कहा है—'स्वस्वरूपानु-संधानं भक्तिरित्यभिधीयते'। इसी प्रकार शैव दर्शन और शाक्त सिद्धान्त में अद्वैत भक्ति नित्यसिद्ध भाव में स्वीकार की गई है। वास्तव में भक्ति देवी ही मोक्ष का रूप मानी

गई है। यह भक्ति ज्ञान से उत्पन्न हुआ एक प्रकार का भाव है जिसको त्रिकदर्शन में चिदानन्द कहते हैं। यद्यपि समरसता की आविर्भाव की अवस्था में भक्ति द्वारा जीवात्मा और परमात्मा में कल्पित भेद हो जाता है परन्तु वह दम्पति के पृथक्ता के समान परमानन्ददायक मुक्ति जैसा ही है।

शक्तिपात

शक्तिपात का मूल कारण अनन्य शरणागति या अनन्य भक्ति है। भक्तवत्सल परमशिव के हृदय में जब जीव पर स्वतः कृपा दृष्टि उत्पन्न हो, तब वह अनुग्रह शक्ति शक्तिपात कहलाती है। इसी से जीव विवेक और वैराग्य पाकर मोक्ष के लिए प्रयत्नशील होता है तथा शिव-शक्ति की अनन्य शरणागति से सुशोभित होता है। शक्तिपात शिव की स्वतंत्र अनुग्राहिका शक्ति है जो अनर्गल है।

शरणागति के भेद

यह शरणागति तंत्रों में मुख्य रूप में छः प्रकार की मानी गयी है।

(१) पहली—शरणागति में प्रभु ही सब कुछ है, कर्ता धर्ता है, ऐसा भाव रखना।

(२) दूसरी में प्रभु के विषय में प्रतिकूलता परित्याग

करना है अर्थात् हरि इच्छा समझ कर सुख-दुख सह लेना।

(३) तीसरी में प्रभु ही सदा मेरा रक्षक है, ऐसी भावना रखना।

(४) चौथी में प्रभु को आत्मभाव से ओतप्रोत मानना है।

(४) पांचवीं में प्रभु को सर्वतोभाव से अपने आपको समर्पण करना है।

(६) छठी में प्रभु के सामने सदा दीनता का भाव रखना है ; सँक्षेप में "मैं" अपराधी हूं, दीन हूं, निराश्रय हूं आदि, ऐसी भावना रखना शरणागति है। इस प्रकार की भावना से जीव मुक्ति-लाभ पाता है तथा परम तत्त्व रूप परंब्रह्म के ज्ञानानन्द में रमता है।

श्रीविद्या सम्प्रदाय और उसके प्रवर्तक

त्रिपुरा सिद्धांत के अनुसार श्रीविद्या ही साक्षात् त्रिपुर सुन्दरी है। इस विद्या के बारह उपासक प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने इस विद्या को आविर्भूत किया है। उनके नाम हैं ;— (१) मनु, (२) चण्द्र, (३) कुबेर, (४) लोपामुद्रा, (५) मन्मथ, (६) अगस्त्य (७) अग्नि, (८) सूर्य, (९) इन्द्र, (१०) स्कन्द, (११) शिव, (१२) दुर्वासा।

पहले इन सबके अलग-अलग सम्प्रदाय थे, अब इनमें केवल दो सम्प्रदाय अधिक प्रचलित हैं। (१) कामराज विद्या (कादिविद्या) (२) लोपामुद्राविद्या (हादिविद्या)

कादिविद्या

जिस पन्द्रह ककारादि अक्षरात्मक मन्त्र से घोर तप करके कामदेव ने श्रीविद्या को संतुष्ट करके परम दुर्लभ वर पाए और इससे अन्य उपासकों ने भी वर प्राप्ति की थी; उसी विद्या को 'कादिविद्या' कहते हैं। सिद्धिप्रदा होने के कारण इस विद्या का विशेष प्रचार हुआ।

हादिविद्या

जिस पन्द्रह हकारादि अक्षरात्मक मन्त्र से लोपामुद्रा ने घोर तपस्या करके सिद्धिलाभ किया, वह हादिविद्या कहलाती है। इन दो के अतिरिक्त इस विद्या के बहुत से आचार्य हुए हैं, जिनमें दत्तात्रेय और परशुराम बहुत प्रसिद्ध हैं। दत्तात्रेय ने दत्त संहिता लिखी है तथा अगस्त्य ने शक्ति सूत्र लिखे हैं। यह दोनों ग्रंथ श्रीविद्या के विषय में बहुत उपयोगी हैं।

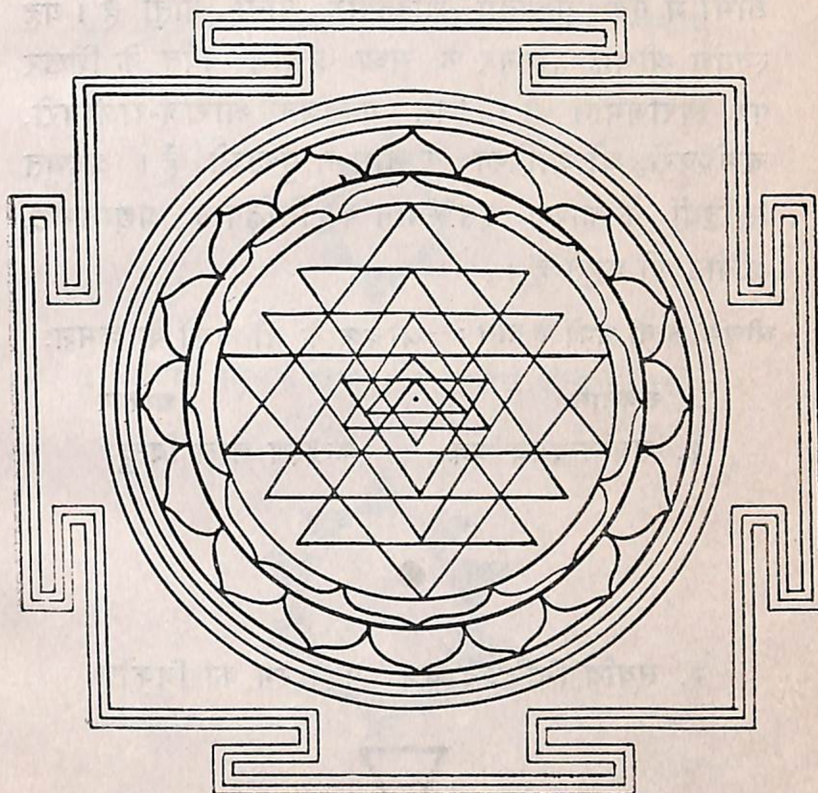
ललिता और उसका स्वरूप

ललिता त्रिशती के अगस्त्य हयग्रीव संवाद में अगस्त्य ने हयग्रीव से प्रश्न किया कि ललिता कौन है? उत्तर में हयग्रीव ने कहा "शिव शक्त्यैक रूपिणी ललिताम्बिका"।

शिव शक्ति के एकात्मकता का स्वरूप ही ललिता है, श्रीचक्र जिसका प्रतीक है।

श्रीचक्र का स्वरूप

बिन्दुत्रिकोणवसुकोण दशारयुग्म
मन्वस्रनागदल-संयुत-षोडशारम्।
वृत्तत्रयं च धरणी-सदन-त्रयं च
श्रीचक्रराजमुदितं परदेवतायाः॥



श्री चक्रम्

"चतुर्भिः शिव चक्रेश्च शक्ति चक्रैश्च पंचभिः ।
नवचक्रैश्च संसिद्धं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः ॥

शिव शक्ति का नवचक्रात्मक रेखात्मक शरीर ही श्रीचक्र है। तान्त्रिक शक्ति पूजा एवं उपासना का आधार श्रीचक्र है। इसी स्वयंभू श्रीचक्र के कारण कश्मीर शक्ति धामों में एक मुख्यतम शक्तिपीठ माना जाता है। यह स्वयंभू श्रीचक्र श्रीनगर के मध्य प्रद्युम्न पर्वत के शिखर पर विराजमान है। जिसे भक्तजन श्रीराज-राजेश्वरी, चक्रेश्वरी, श्री शारिका के नाम से पुकारते हैं। अद्‌भुत सिद्धियों के कारण इस स्थान को सिद्धिपीठ, प्रद्युम्नपीठ, श्रीपीठ भी कहते हैं।

श्रीचक्र के नौ चक्रों के नाम :—श्रीचक्र के नौ चक्रों के क्रमशः

चक्रनाम	**आकार**
१. सर्वानन्दमय चक्र	केन्द्रस्थ लाल बिन्दु



२. सर्वार्थ सिद्धिप्रद चक्र	पीले रंग का त्रिकोण



३. सर्वरोगहर चक्र काले रंग का अष्टकोण



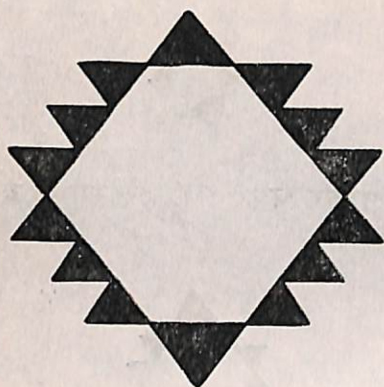
४. सर्वरक्षाकर चक्र हरे रंग के दस त्रिकोण



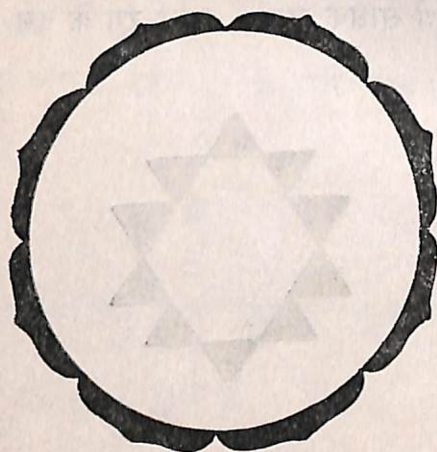
५. सर्वार्थ साधक चक्र लाल रंग के दस त्रिकोण



६. सर्व सौभाग्यदायक चक्र नीले रंग के १४ त्रिकोण



७. सर्व संक्षोभन चक्र गुलाबी रंग के अष्टदल कमल



८. सर्वाशापरिपूरक चक्र नीले रंग का १६ दल कमल



९. त्रैलोक्यमोहन चक्र   वृत्तत्रय त्रिरेखात्मक



नौ चक्रों की अधिष्ठात्री देवियां

१. सर्वानन्दमयबिन्दु चक्र की अधिष्ठात्री देवी स्वयं महात्रिपुर सुन्दरी है जो श्वेत रक्त बिन्दु स्वरूपा है।

२. सर्वार्थ सिद्धिप्रद चक्र की त्रिपुराम्बा।

३. सर्वरोगहर चाक्र की त्रिपुरा सिद्धा।

४. सर्वरक्षाकर चक्र को त्रिपुर मालिनी ।

५. सर्वार्थसाधक चक्र की त्रिपुरा श्री

६. सर्वसौभाग्यदायक चक्र की त्रिपुर वासिनी ।

७. सर्वसंक्षोभन चाक्र की त्रिपुर सुन्दरी ।

८. सर्वाशापरिपूरक चक्र की त्रिपुरेशी ।

९. त्रैलोक्यमोहन चक्र की त्रिपुरा है ।

शैवाचार्यों के अनुसार नौ अधिष्ठात्रियों के नाम :—

१. महामाहेश्वरी

२. महामहाराज्ञी

३. महामहाशक्ति

४. महामहागुप्ता

५. महामहाज्ञप्ता

६. महामहानन्दा

७. महामहास्पन्दा

८. महामहाशया

९. महामहाश्रीचक्रनिवासिनी महात्रिपुर सुन्दरी है।

इस प्रकार प्रत्येक त्रिकोण या दल की देवी है जिनका उल्लेख श्रीचक्र पूजा प्रकरण में होगा ।

शक्ति चक्र और शिव चक्रों का स्वरूप

यह नौ चक्र दो भागों में विभाजित किए गये हैं ।

१. शक्ति चक्र ।

२. शिव चक्र ।

शक्ति से संबंधित चक्र शक्तिचक्र कहलाते हैं। इनका स्वरूप अधोमुख त्रिकोण होता है—▽। शिव से संबंधित चक्र शिव चक्र कहलाते हैं। इनका स्वरूप ऊर्ध्वमुख त्रिकोण होता है जैसे—△

शक्ति चक्र पांच हैं;—१. त्रिकोण २. अष्टकोण ३.-४. दशारद्वय ५. चतुर्दशार।

शिव चक्र चार हैं :—१. बिन्दु २. अष्टदल ३. षोडशदल ४. चतुरस्त्रा

शक्तिचक्र और शिव चक्रों का सम्बन्ध

"चतुर्भिः शिवचक्रैश्वः शक्तिचक्रैश्च पंचभिः।
नव चक्रैश्च संसिद्धं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः॥

(ललिता त्रिशती)

जिस प्रकार शिव शक्ति में आपस में अविनाभाव सम्बन्ध हैं उसी प्रकार चार शिवचक्रों तथा पांच शक्ति चक्रों में आपस में अंगागिभाव सम्बन्ध है। वे शिवशक्तिस्वरूप होने के कारण अलग-अलग नहीं रह सकते हैं, क्योंकि उनका सदा अविनाभाव सम्बन्ध है अर्थात जहां शिव है वहां शक्ति भी है, इस कारण बिन्दु और त्रिकोण का, अष्टकोण और अष्टदल का दो दस त्रिकोणों और षोडशदल का, तीन भुवनों तथा वृत्तत्रय का आपस में नित्य सम्बन्ध

है। इस प्रकार शक्ति त्रिकोणरूपिणी है और परमशिव बिन्दुस्वरूप है जिनका सदा अविनाभाव सम्वन्ध रहता है।

"त्रिकोणरूपिणीशक्तिर्बिन्दुरूपधरः शिवः।
अविनाभाव सम्बन्धस्तस्माद्बिन्दु त्रिकोणयोः॥"

(ललिता त्रिशती)

श्रीविद्या में शक्ति और शिव के मंत्राक्षर

इसी प्रकार श्री विद्या महामन्त्र के मन्त्राक्षर भी शैव और शाक्त, दो भागों में विभाजित हैं। तीन ककार, दो हकार शैवभाग में आते हैं, शेष मंत्राक्षर शक्ति भाग में हैं, परन्तु 'ह्रीं' दोनों भागों में प्रतिनिधित्व करता है।

क त्रयं ह द्वयं चैव शैवो भागः प्रकीर्तितः।
शक्त्यक्षराणि शेषाणि ह्रींकार उभयात्मकः॥

(ललिता त्रिशती)

यह मन्त्र रहस्य है जो गुरुमुख से प्राप्त किया जाता है।

श्रीचक्र का महत्व तथा स्वरूप

शक्ति तंत्र के अन्तर्गत श्री चक्र का स्थान महत्वपूर्ण है। इस सिद्धान्त के अनुसार श्रीचक्र तथा पराशक्ति त्रिपुरसुन्दरी में कोई भेद नहीं है। जिस प्रकार मन्त्र और देवता में अभेद है उसी तरह पराशक्ति और श्रीचक्र में अभेद है; अतः श्रीचक्र का स्थान शिवशक्तिमय होने के कारण सर्वोपरि है।

"श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः।"

(ललिता त्रिशती)

इसमें नौ चक्र हैं, जिनका उद्‌भव बीज रूप में विन्दु से हुआ है, जो इन नौ चक्रों में विशिष्ट स्थान रखता है तथा साक्षात् शक्तिमय ही है क्योंकि शिवशक्ति का आपस में अविनाभाव सम्बन्ध है ।

"न शिवः शक्ति रहितो न शक्ति व्यतिरेकिणी"।

(शिव दृष्टि)

अर्थात् शिव शक्ति एक दूसरे से अलग नहीं अपितु एक हैं । शिव सर्वत्र व्याप्त है अतः विमर्शमयी शक्ति भी सर्वत्र है । भैरवयामल तंत्र में महादेव ने गौरी से इसी परिप्रेक्ष्य में कहा है कि पराशक्तिरूप श्रीचक्र के बैन्दवस्थान में सदाशिव रहता है, अतः शिव शक्ति का प्रतीक श्रीचक्र ब्रह्माण्डाकार भी है, जो पंचभूतात्मक, पंचतन्मात्रात्मक एवं पांच ज्ञानेन्द्रिय रूप, मनस्तत्त्व, मायादितत्त्व स्वरूप है ।

श्रीचक्र के बैन्दवस्थान में त्रिजगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहारकारिणी ज्योतिस्वरूपा कामेश्वरांकनिलया कामेश्वरी महात्रिपुर सुन्दरी विराजमान है। उसके दिव्यतेजोमय स्वरूप से उत्पन्न अनन्त किरणें सारे ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करती हैं। उन अनन्त ज्योतिर्मय किरणों के मध्य में त्रिविन्द्वात्मक सूर्य, चन्द्र, अग्नि के स्वरूपों के समेत मुख्य ३६० किरणें हैं, जिनमें ११६ सूर्य की, १३६ चन्द्र की तथा १०८ अग्नि की हैं। दिन में सूर्य, रात में चन्द्र

और दोनों सन्ध्याओं में अग्नि सारे ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करते हैं। ज्योतिर्मय होने के फलस्वरूप यह त्रिबिन्दु काल चक्र के प्रवर्तक माने गये हैं। कालत्रय के प्रकाशक होकर ३६० दिनों वाले वर्ष में महादेव द्वारा सृष्टि स्थिति संहार का प्रपंच चलाते हैं। उपनिषदों के अनुसार :—

'तच्छृष्ट्वा तमेवानुप्रविश्य"

उस (जीव) की सृष्टि कर उसी में प्रविष्ट होकर

या

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।

(श्वेताश्व० ६,१४)

उसी समय प्रकाशमय परम शिव की प्रकाशमयी किरणें सारे जगत् को जगमगाती हैं, और उसी प्रकाशमय मुख्य बिन्दु से विमर्शस्वरूप (जगत्) और दो बिन्दु पैदा होते हैं, जिनके मिलाप से एक सर्वतेजोमय बिन्दु बनता है। वास्तव में जो प्रकाश ही है और सृष्टि, स्थिति, संहार करने में समर्थ है इन्हीं उपरोक्त तीन बिन्दुओं या त्रिरेखाओं से योनिचक्र बनता है जो श्रीचक्र का मुख्य आधार है।

शक्ति का रहस्य इसी योनिचक्र स्वरूप त्रिकोण या विमर्शात्मक त्रिकोण में है जिसे काश्मीरिक त्रिपुरा सिद्धांत के अनुसार मातृका चक्र के नाम से सम्बोधित किया जाता

है, जिसमें बिन्दुरूप परमशिव (कामेश्वर) इच्छा, ज्ञान, क्रियात्मक विमर्श शक्ति से सारे ब्रह्माण्ड का स्फार करता है। जिसका साक्षात् सम्बन्ध कामेश्वरी, वज्रेश्वरी तथा भगमालिनी से है। सत्व, रज, तमः प्रधान होने के कारण इनके रंग, श्वेत्, पीत तथा हरा या काला है। श्वेत-पीत कामेश्वरी का द्योतक है जो सत्व प्रधान है। लाल वज्रेश्वरी का द्योतक है जो रजः प्रधान है। हरित या श्याम भगभालिनी का द्योतक है जो तमः प्रधान नील वर्ण है। सृष्टि, स्थिति, संहार की अधिष्ठात्री होकर मूल रूप में त्रिबिन्दु आत्मक है। इन तीन बिन्दुओं में से पहला बिन्दु "अहमह" का द्योतक है जिसमें अ से ह तक सारी वर्णराशि अन्तर्गत है। दूसरा बिन्दु प्रकाश स्वरूप साक्षात् शिव है। तीसरा बिन्दु विमर्श स्वरूपिणी साक्षात् शक्ति है।

"विमर्शरूपिणी शक्तिर्बिन्दुरूपधरः शिवः।
अविनाभाव सम्बन्ध स्तस्माद्बिन्दु त्रिकोणयोः।।

(ललिता त्रिशती)

यही तीन बिन्दु त्रिकोण रूप में परिणत होकर क्रमशः पूर्णाहन्ता परमशिव तथा जड़ाजड़ विश्व के परिचायक हैं। यही माता, मेय, मान (ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान) सूर्य, चन्द्र, अग्नि। हरि, सर, हिरण्यगर्भ। इच्छा, ज्ञान, क्रिया; सत्व, रज, तम, मन, बुद्धि, अहंकार—इन इन त्रिपुटी के सूचक

हैं। इनका मूल स्वरूप में बीज त्रिकोण स्वरूप है जो त्रिरेखात्मक है। यह रेखाएं भी त्रित्व रूप में पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी ; भूः, भुवः स्वः ; उदात्त, अनुदात्त, स्वरित ; इडा, पिंगला, सुषुम्णा, परा, परापरा, अपरा रूप में सर्वत्र उल्लसित होती है। इन तीनों की साम्यावस्था मिश्रबिन्दु रूप में पाई जाती है। जिसका वर्ण श्वेतरक्त है, जो काम कहलाता है। परम मनोहर होने के कारण योगी इसे पाना चाहते हैं। यही श्वेत रक्त मिश्र बिन्दु त्रिरेखात्मक होकर कामा, ज्येष्ठा, रौद्री का प्रतीक है जो कामेश्वरी, वज्रेश्वरी तथा भगमालिनी इन तीनों रूपों का अधिष्ठान है। यही त्रिबिन्दु होने के कारण त्रिपुरसुन्दरी या कामकला कहलाती है। श्री अभिनवगुप्ताचार्य ने इसी नादमयी कामकला की स्तुति इस प्रकार की है।

"तव च का किल न स्तुतिरम्बिके
सकल शब्दमयी किल ते तनुः।
निखिल मूर्तिषु मे भवदन्वयो
मनसिजासु बहिः प्रसरासु च ॥
इति विचिन्त्य शिवे ! शमिताशिवे
जगति जातमयत्न वशादिदम्।
स्तुति जपार्चनचिन्तनवर्जिता
न खलु काचन काल कलास्ति मे ॥

(हे राजराजेश्वरी परावाक्। संसार में कौन ऐसा वाङ्मय या साहित्य है जो तुम्हारी स्तुति नहीं है, क्योंकि तुम्हारा शरीर ही अखिल शब्दमय है। जिसके कारण मेरे संकल्पविकल्पमय मन में दिखाई देने वाली सम्पूर्ण पदार्थों में आपके ही स्वरूप का आभास होने लगा है। हे समस्त अमंगल दूर करने वाली सुमंगले माता इस बात को सोच कर अब बिना किसी प्रयत्न की मेरी स्थिति चराचर जगत में व्याप्त हो गई है। अतः मेरे समय का क्षुद्र अंश भी तुम्हारी स्तुति पूजा जप या ध्यान रहित नहीं है। अर्थात् मेरा सारा कार्यकलाप ही तेरी पूजा अर्चना रूप में परिणत हो गये हैं)

यही नादमयी त्रिपुरसुन्दरी त्रिविध चक्रात्मिकता के रूप में उल्लसित तथा परिणत हो गई है जिसके लाल बिन्दु से शब्द ब्रह्म स्वरूप अक्षर उत्पन्न हुए, जो सूक्ष्म शब्दों के मूल कारण हैं। इस शब्द ब्रह्म स्वरूपिणी वर्णमाला से सूक्ष्म शब्द, स्पर्श, रूप रस और गन्ध की उत्पत्ति हुई है। इसी प्रकार सफेद बिन्दु से स्थूल पंचभूतात्मक अनन्त ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुए हैं। श्री पुण्यानन्द जी ने काम कला विलास में इसी भाव को इस प्रकार वर्णन किया है।

"परशिव रविकर निकरे प्रतिफलतिविमर्श दर्पणे विशादे।
प्रति रुचि रुचिरे कुड्ये चित्तमये निवसति महाबिन्दु॥

(प्रकाशमय परमशिव रूप सूर्य के किरण पुंज की द्युति, अर्थात् निर्मल विमर्श तथा विस्फुरण शक्ति से उल्लसित जव चित्त रूप दीवार पर पूर्णाहन्ता का प्रतिबिम्ब पड़ता है तब महाबिन्दु का प्रादुर्भाव होता है। जैसे किसी निर्मल आईने में सूर्य की किरणों का प्रतिबिम्ब निकटस्थ दीवार पर पड़ता है उसी प्रकार परमशिव के प्रकाश का आत्म-शक्ति स्वरूप विमर्श-शक्ति के रूप से चित्त में प्रादुर्भाव होता है, उसी से महाबिन्दु रूप पूर्णाहन्ता का आभास होने लगता है। क्योंकि बिन्दु रूप शिव अन्तर्मुखावस्था में "अहं" प्रकाश है और वही बहिर्मुखावस्था में "इदं" विमर्श स्वरूप है। यह विमर्श शक्ति ही त्रिविद्यात्मक त्रिकोण स्वरूप पराशक्ति है। जिसे त्रिपुराम्बिका, त्रिपुरसुन्दरी, त्रिजगज्जननी, महाविद्या, श्रीविद्या, पराविद्या, गायत्री, सावित्री, सरस्वती आदि नामों से जाना जाता है। यह विश्वाकार वहिर्मुख श्रीचक्र या मातृका चक्र है, जो उत्पत्ति चक्र का मूल कारण है।

त्रिपुरसुन्दरी और उसके मन्त्र में अभेद

जैसे श्वेतबिन्दु और रक्तबिन्दु में अभेद है उसी प्रकार त्रिपुरसुन्दरी और उसके पन्द्रह अक्षर वाले मन्त्र में आपस में कोई भेद नहीं है, अर्थात पंचदशाक्षर मंत्र ही त्रिपुरसुन्दरी है यथा "मन्त्रमयो हि देवा:"। जिसका अर्थ ही कला है

जिससे सारे प्रपंच की उत्पत्ति होती है। यही प्रकाश विमर्श रूप शब्द त्रिकूटात्मक त्रिबिन्दु स्वरूप है, जिनके नाम वाग्भवकूट, मध्यकूट तथा कामराजकूट या शक्तिकूट है। यह त्रिकूट हर किसी मनुष्य या देव में माता, मेय तथा मान रूप में विद्यमान है।

(प्रमाता) माता—साधक में ठहरा हुआ ईश्वर।

(प्रमेय) मेय—ईश्वरी जानकारी की साधन बनी हुई विद्या।

(प्रमाण) मान—विद्या द्वारा ज्ञायमान महात्रिपुर सुन्दरी। इन तीनों का त्रिपुरसुन्दरी स्वयं भाव रूप में अनुभव करती है। यह तीन भाव ही तीन धाम हैं। (१) ब्रह्मधाम (२) विष्णुधाम (३) रुद्रधाम। यही तीन पीठ हैं: (१) जालन्धर पीठ, (२) उड्डियानपीठ, (३) कामगिरिपीठ। यही इच्छा, ज्ञान, क्रिया, शक्ति रूप है। यही बिन्दुत्रयी, स्वायंभुव, रसलिंग तथा ज्योतिर्लिंग में विराजमान है। महामातृका रूप में यही बिन्दुत्रय ब्राह्मी गौरी, माहेश्वरी—अ, इ, उ है।

पराविद्या और मंत्र

इस प्रकार यह त्रिपुरसुन्दरी सारे ब्रह्माण्ड में पराविद्या के रूप में व्याप्त है जिसके अवयव भूः भुवः, स्वः है। यह

विविधात्मिका होने के कारण सब प्रपंच को उत्पत्ति रक्षा प्रलयकारिणी है। अतः पंचदशाक्षरी श्रीविद्या साक्षान्-मंत्रात्मिका देवता है। यह आकाश, जल, वायु, तेज गन्ध इन स्थूल पंचभूतों के सत्व, रज, तम तीन गुणों की संख्या में गुणा करने पर पन्द्रह अक्षर वाली बनती है। पन्द्रह तिथियां इसके अवयव हैं, जो शिवशक्तिमय अथवा प्रकाश विमर्शमय दिन और रात का आकार धारण करके स्वयं पराविद्यारूप में व्याप्त है। भाव यह है, यही प्रकाश विमर्श रूपिणी शक्ति जो पंचभूतात्मिका है सत्व, रज, तम भेद से पन्द्रह अक्षरात्मिका तिथि या देवता रूपिणी है।

"एक एव प्रकाशाख्यः परः कोऽपि महेश्वरः।
तस्य शक्तिः विमर्शाख्या सः नित्या गीयते बुधैः॥
आकाशानिल सप्तार्चि सलिलावनि भेदतः।
एकैक गुण वृद्धया तु तिथि संख्यातुमागता।
गता सा षोडशैर्भेदैस्त्रिपुरा परमेश्वरी।

(त्रि० सु० मन्दिर)

इस प्रकार भगवती पराविद्या स्वरव्यंजनों के समुदाय और तीन बिन्दुओं से उत्पन्न छत्तीस तत्त्वों के स्वरूप में विराजमान है। अर्थात् वाग्भवकूट में ५ स्वर, ७ व्यंजन १२ वर्ण। मध्यकूट या कामराजकूट में ६ स्वर, ८ व्यंजन

१४ वर्ण । शक्तिकूट में ४ स्वर ६ व्यंजन १० वर्ण यही छत्तीस वर्ण छत्तीस तत्त्वों के प्रतीक हैं और सारे विश्व की जननी परावाक् के ही स्वरूप होने के कारण मंत्र और देवता, दोनों रूपों में अभेदात्मकता है ।

त्रिपुरसुन्दरी स्वरूप नवचक्रात्मक श्रीचक्र का विकास

एक होकर भी अनेक भासमान नवचक्रात्मक श्रीचक्र के मध्य में विराजमान बिन्दु ही पराशक्ति है । यही बिन्दु जब विकास या स्फूर्ति में आता है तो यह त्रिकोण रूप में परिणत हो जाता है जो कि क्रमशः इच्छा, ज्ञान, क्रिया स्वरूपिणी वामा, ज्येष्ठा, रौद्री देवियों के अधिष्ठान हैं । यही तीन शक्तियां 'त्रिबीज रूप' में वाग्भवकूट, मध्यकूट तथा शक्तिकूट रूप से शक्तिबीज कहलाते हैं । यही इच्छा ज्ञान, क्रिया शक्तिमयी त्रिगुणा, त्रिजगत्-निर्मात्री सर्वशास्त्रमयी पराशक्ति एक होकर भी अनेक रूपों में भासमान है । यह भासमानता वैसी ही है जैसे समुद्र की फेन, तरंग, बुलबुले, मौलिक पानी के विकार होते हुए भी ऊपरी तौर से भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं । जगत् का विकास करने में त्रिजगत् जननी महात्रिपुर सुन्दरी पश्यन्ती रूप में नवचक्रात्मिका बनकर जगत् का स्फार करती है ।

"तेननवात्मा जाता माता ।"

(कामकला विलास)

त्रिकोण में सर्वप्रथम रेखा वामा वमन या विश्वसृजन करने वाली है। दूसरी रेखा ज्येष्ठा सर्वमंगल करने वाली है। तीसरी रेखा रौद्री इय्टदायिनी अम्बिका रूप में प्रादुर्भूत है। यही तीनों रेखाएं इच्छा, ज्ञान, क्रिया अथवा पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी कहलाती है।

"सोमध्यमाभि धानाभ्याम्।"

(क० क० वि०)

(परा पश्यन्ती के समरसाकार होने पर मध्यमा का साक्षात्कार होता है। मध्यमाशक्ति स्थूल सूक्ष्म रूप से दो प्रकार की है, एक समाधि बल से अनुभव में आने वाली और दूसरी पंडितों द्वारा बरती जाने वाली वर्णमाला स्वरूपा।)

"नव नादमयी सूक्ष्मा स्थूला नव वर्णात्मा।"

(क० क० वि०)

जब महामृतृका कुंडलिनी परम बिन्दु रूप शिव में लीन हो जाती है, तो उस समय नौ चक्रों को पार करते समय परमशाक्त भी पुण्यानन्द के अनुसार नौ नादों का यूं अनुभव करते हैं :—

प्रथम चक्र में चिणि का नाद होता है।

द्वितीय चक्र में चिणि चिणि का नाद होता है।

तृतीय चक्र में घण्टा का सा नाद होता है।

चतुर्थ चक्र में शंख जैसा नाद होता है।

पंचम चक्र में सितार का सा नाद होता है।

षष्ट चक्र में तबले का जैसा नाद होता है।

सप्तम चक्र में बांसुरी का सा नाद होता है।

अष्टम चक्र में ढोल का सा नाद होता है।

नवम चक्र में मृदंग का सा शब्द सुनाई देता है।

इसी प्रकार सूक्ष्म स्थूल रूप में अक्षर विन्यास भी होता है। इनमें पारस्परिक कोई अन्तर नहीं है अपितु तादात्म्य है। त्रिकोण के तेज प्रसार से ही अष्टकोण रूप में वैखरी शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ है, जो लौकिक अलौकिक सब शास्त्रों का आधार है। श ष स ह, प फ ब म, इन अक्षरों से अष्टमूर्ति स्वरूपा, अष्टमातृका बिन्दु चक्र के तेज प्रसार से अष्टत्रिकोण रूप में विकसित हुई, जो अष्टसिद्धिप्रदा है।

इसी अष्टकोण के प्रतिबिम्ब से दो दश कोण चक्र उत्पन्न हुए। पहला दशारचक्र त थ द ध न तथा ट ठ ड ढ ण इन दस अक्षरों तथा दूसरा दशार चक्र क ख ग घ ङ तथा च छ ज झ ञ से उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार अकारादि चौदह स्वरों से सर्वसौभाग्य दायक चौदह

त्रिकोणों की उत्पत्ति हुई जो प्रकृति के मूल तत्त्व या चौदह भुवन हैं।

इस प्रकार पराशक्ति का स्वरूप विन्दुचक्र से पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी का प्रादुर्भाव हुआ जो अ से क्ष तक के वर्णों के रूप में वर्तमान है।

"आदि क्षान्तामक्षर मूर्त्या विलसन्तीम्।"

(शंकराचार्यकृत गौरी स्तुतिः ६)

अर्थात् महात्रिपुरसुन्दरी सर्वशास्त्रात्मिका सर्व प्रपंचमयी है। वैखरी शक्तिस्वरूप ककारादि आठ वर्णों से ओतप्रोत अष्टदलात्मक सर्व संक्षोभन तथा स्वरगणस्वरूप ककारादि सोलह वर्णों जो पन्द्रह चन्द्र कलाओं तथा पराकला के प्रतीक हैं। ऐसा सर्वाशा परिपूरक चक्र महा-योगियों को ध्यानगम्य रहता है जहाँ से अमृत टपकता रहता है। इसके बाद तीन वृत्ताकार रेखायें जो साक्षात सूर्य, चन्द्र और अग्नि की प्रतीक हैं पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी से संबंधित है, इनका अनन्त ज्ञान प्रकाश जब आगे बढ़ता है, वही गुरू मण्डलात्मक भूपुर रूप में प्रस्फुटित होता है और श्रीचक्र का अभिन्न अंग बन जाता है।

यही अनन्त तेजोमयी पराशक्ति जो असंख्य योगियों और योगिनियों द्वारा अनुभूत है, यही अनन्त किरण

जालमय अवयवों वाली कामेश्वरांकनिलया कामेश्वरी बिन्दुमय चक्र पर विराजमान है।

"कलाविद्या पराशक्ति श्रीचक्राकार रूपिणी।
तन्मध्ये बैन्दवस्थानं तत्रास्ते परमेश्वरी॥"

(क० क० वि०)

यही पराशक्ति जो विश्व सृष्टि शीला है जिसका पाश (बन्धन) स्वरूप ही इच्छा शक्ति है। अंकुश (भेददलन रूप) ज्ञान शक्ति है। इक्षु-चाप-पंचबाण अपने से अभिन्न आकार रहित साधनस्वरूप क्रियाशक्ति है। यह तीनों शक्तियाँ उसी की आज्ञा से पाशादि स्वरूप धरकर उपासनारत हैं। यही पराशक्ति गुरु तथा मंत्रस्वरूप भी है। यही प्रकाश विमर्श होने के कारण स्वयं अर्धनारीश्वर रूप में स्त्री पुरुष होकर सत्व, रज, तम रूप में दिव्य तीन जोड़ियाँ हैं :

(१) ऊर्ध्वदीपनाथ——मित्रेश्वरी।
(२) ज्येष्ठनाथ——वज्रेश्वरी।
(३) मित्रदेवनाथ——भगमालिनी।

इन्हीं तीन जोड़ियों से देव सिद्ध मानवों तथा चराचर जगत की सृष्टि होती है जो सर्वत्र व्याप्त है। सृष्टिक्रम के

बाद परमगुरु परम शिव आदिनाथ ने श्रोपीठ पर विराजमान होकर अपनी विमर्शरूपिणो शक्ति कामेश्वरी को श्री विद्या का ज्ञान दिया। वही ज्ञान श्रीविद्यास्वरूप कामेश्वरी ने द्वापर और कलियुग के मुख्य गुरुओं मित्रेश, षष्ठेश और उड्डीशनाथ को प्रदान किया जो कि वाग्भव-कूट मध्यकूट और शक्तिकूट के अधिपति हैं। इस प्रकार यही ज्ञान अविच्छिन रूप में अबाधगति से आगे बढ़ता हुआ योगियों का सर्वस्व है।

नौ चक्रों के त्रिकोणों या दलों का बहिर्मुख रूप में अभिप्राय :

इस विश्वाकार बहिर्मुख श्री चक्र में नौ चक्र हैं जिनका अभिप्राय नीचे दिया जाता है :—

सर्वप्रथम त्रैलोक्य मोहन चक्र भूपुर का वर्णात्मक शब्द ब्रह्म से अभिप्राय है जहां वर्णमाला को 'मालिनी' रूप में पूजा जाता है। तदनन्तर सर्वाशापरिपूरक चक्र षोडशदल का स्थान है जिसका अभिप्राय कामाकर्षिण्यादि सोलह मनोविकारों से है यह इस प्रकार हैं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, चर्म, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, वाक्, पाणि, जंघा, पाद, गुदा तथा उपस्थ यही सोलह मनोविकार हैं।

सर्वाशापरिपूरक चक्र के बाद सर्वसंक्षोभन चक्र का स्थान है जिसमें अष्टदल होते हैं जो अनंग कुसमादि आठ

बुद्धियाँ हैं; वे हैं, वचन, आदान, गमन, विसर्ग, आनन्द, हानोपादान, उपेक्षा आरब्ध ।

इसके अनन्तर सर्व सौभाग्यदायक चक्र चौदह त्रिकोण हैं जिनका सम्बन्ध सर्वसंक्षोभग्यादि चौदह शक्तियों से है जो नाड़ी स्वरूप है, वे हैं—अलम्बुसा, कुहू, विश्वोदरा, वारुणी, हस्त्रिजिह्वा यशोवती, पयस्विनी, गांधारी, पूषा, शंखिनी, सरस्वती, इडा, पिंगला, सुषुम्णा ।

सर्वसौभाग्य चक्र के बाद सर्वाथसाधक चक्र दस त्रिकोण आते हैं, जिनका अभिप्राय दस वायु या प्राण से है जो इस प्रकार हैं :—

प्राण, अपान, व्याण, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनंजय ।

सर्वार्थसाधक चक्र के बाद सर्वरक्षाकर चक्र है जिसमें दस त्रिकोण आते हैं जिनका अभिप्राय जाठराग्नि रूप दस बह्निकलाओं से है जो सब जीवों के देहों में भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य, पेय, कटु, मधुर, अमलात्मक आठ अन्न पचाती है ।

इसके अनन्तर सर्वरोगहर चक्र के आठ त्रिकोण हैं जिनका अभिप्राय वशिण्यादि आठ शक्तियां हैं जो इस प्रकार है ;—

शीत, उष्ण, सुख, दुख, इच्छा, सत्व, रज, तम ।,

सर्वरोगहर चक्र के बाद सर्वार्थसिद्धिप्रद एक त्रिकोण चक्र होता है जो सत्व, रज, तमात्मक तीन देवियां कामेश्वरी, वज्रेश्वरी, तथा भगमालिनी का त्रिरेखात्मक प्रतीक है जो मन रूपी इक्षु, राग रूपी पाश, द्वेष रूपी अंकुश स्वरूप है।

इसके बाद सर्वानन्दमयचक्र, बिन्दु, संवित् शक्तियुक्त कामेश्वर है। "संवितकामेश्वरः स्मृतः"। इसकी संवित् शक्ति ही सब प्रपंच की उन्मेष कारिणी है।

मूल प्रकृति त्रिपुर सुन्दरी के विविध अवतार और उपासना पद्धतियां

मूल प्रकृति महात्रिपुरसुन्दरी (महालक्ष्मी) ने भक्तों के अभय तथा दैत्यों के विनाश के लिए अनेक अवतार धारण किये हैं, जिनके फलस्वरूप कृत्यानुसार उनके नाम पड़ गये हैं। जो सात्विक, रजस, तमस रूप में हमें मिलते हैं जो अनन्त है अतः उनकी उपासना भी सात्विक राजस तथा तामस रूप में प्रचलित है।

सात्विक उपासना में योगीजन अन्तर्मुखी प्राणायाम परक तथा आत्मचिंतनात्मक महामातृका कुंडलिणी जागरण स्वरूप षट्चक्रों को पार करती हुई परम बिन्दु रूप शिव में

लीन करते हैं जिससे उनको शिवोऽहं के रूप में आत्म-स्वरूप का साक्षात्कार होता है।

दूसरी उपासना पद्धति राजस है जो प्रायः सकाम होती है तथा जहां राजस पदार्थों से बलि दी जाती है तथा भोगपरक होती है या काम, क्रोध, लोभ की बलि देते हैं। तीसरी उपासना पद्धति तामस है जिसके बलि विधान में तामस पदार्थों जैसे मदिरा, मांस आदि का प्रयोग किया जाता है।

तन्त्रों में राजस तामस पूजा विधान इस प्रकार है :—

राजस :—

अर्घ्यादिभिरलंकारैर्गन्धपुष्पै स्तथाक्षतैः।
धूपैर्दीपेश्च नैवेद्यैः नाना भक्ष्य समन्वितै।।

(प्राधानिक रहस्य)

इस पूजा विधान में अर्घ्य, गन्ध, पुष्प, अक्षत, अलंकार, धूप, दीप, नाना प्रकार के भोजनीय पदार्थ, नैवेद्य रूप में अर्पित किये जाते हैं।

तमस :—

"रुधिराक्तेन बलिना मांसेन सुरया नृप।
बलि मांसादि पूजेयं विप्र वर्जामयेरिता।।

तामस पूजा में पशु बलि जिसमें रक्त, मांस, मदिरा का प्रयोग किया जाता है। परन्तु सात्विक उपासक

ब्राह्मणों के लिए यह बलि वर्जणीय है। उनके लिये गन्ध, पुष्प, धूप, दीप ही बलिद्रव्य हैं जो भक्तिभाव से युक्त हों।

उपासना में भाव

उपासना में भक्ति या भाव में एक मानसिक वृत्ति या धर्म का संकेत मिलता है जो हम शब्दों से वर्णन नहीं कर सकते अपितु वह मानसिक प्रक्रिया है जिसका पूजा, अर्चना में विशेष महत्व है। इस भाव या भक्ति के विना वह दिखावा मात्र है। शक्तिसिद्धांत में यह भाव तीन प्रकार से माने गये हैं :—

भावों के तीन भेद :

(१) दिव्यभाव (२) वीरभाव (३) पशुभाव।

इनको हम सात्विक, राजस, तामस वृत्ति भी कह सकते हैं। इनमें सात्विक वृत्ति वाले को दिव्यभाव में, राजस वृत्ति वाले को वीरभाव में, और तामस वृत्ति वाले को पशुभाव में रखा जा सकता है।

दिव्यभाव में साधक अपने इष्टदेव के साथ तादात्म्य स्थापित करके तद्रुप (शिवोऽहं) होना चाहता है।

वीरभाव में साधक संसार के सब पदार्थों को भगवत्-स्वरूप ही मानता हुआ परमात्मा में ही समर्पण की बुद्धि रखता है।

पशुभाव में उसकी बुद्धि द्वैतभाव से युक्त होकर तामसी प्रवृत्तियों में वंधी रहती है, जो सर्वथा बन्धनमूलक होती है।

आचार और उनके भेद

ऊपर लिखे भावों का तन्त्रों में आचारों के साथ विशिष्ट सम्बन्ध है जिनके नाम हैं :—

(१) वेदाचार (२) वैष्णवाचार (३) शैवाचार (४) दक्षिणाचार (५) वामाचार (६) सिद्धान्ताचार (७) कुलाचार या समयाचार।

(१) वेदों के विधान को मानना वेदाचार कहलाता है।

(२) विष्णु को परंब्रह्म समझ कर भक्तियुक्त मन से उसकी उपासना करना वैष्णवाचार कहलाता है।

(३) शिव को उत्पत्ति, रक्षा, प्रलयकारक मान कर उसकी उपासना करना शैवाचार कहलाता है।

(४) पराशक्ति को जगद्बीज मानकर उसकी उपासना करना दक्षिणाचार कहलाता है ।

(५) दिव्यभाव से अपने को शिवस्वरूप मानकर जो पराशक्ति की उपासना अन्तर्मुख भाव में करता हो वह वामाचार का साधक है ।

(६) जो शम नियम का आश्रय लेकर सोऽहं का अनुभव करता हो वह सिद्धान्ताचार का साधक है ।

(७) जो शत्रु-मित्र, मिट्टी-सोने, श्मशान-घर, चन्दन और कीचड़ में समबुद्धि रखता है तथा अपने को शिवस्वरूप समझता है, ऐसा आचार कुलाचार है ।

(या) समयाचार :—तंत्र और वैदिक मार्ग का अनुसरण करते हुए शिवशक्ति को अभिन्न मान कर उनकी निष्काम भाव से उपासना करना समयाचार है। प्रायः सारा कश्मीर प्रदेश इसी आचार का अनुयायी है और आज भी यहां यही आचार सर्वत्र प्रचलित है ।

स्थूल पंचमकार

भाव भेद के कारण वामाचार वालों की बाह्य पूजा में मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन का विधान मिलता

है जो वेद विरुद्ध होने के कारण निन्दनीय है तथा पशुभाव के अन्तर्गत है। दिव्य और वीरभाव वालों के लिए इसकी अंतर्मुखी सात्विक पूजा का महत्व है।

"अन्तर्मुख समाराध्या बहिर्मुख सुदुर्लभा।"

(ललिता सहस्रनाम)

सुक्ष्म पंचमकार

अन्तर्मुख सूक्ष्म पंचमकार इस प्रकार हैं :—

(१) मद्य—जो ब्रह्म रन्ध्र से बहती अमृत धारा से आनन्दित होता है वह मद्य सेवी है।

(२) मांस—जो सदा मौनी होकर अपने कर्म समूह को भगवदर्पण करता है वह मांस साधक है।

(३) मत्स्य—जो साधक इडा पिंगला के श्वास उच्छ्वास रूपी मछलियों को प्राणायाम द्वारा संयत रखता है, वह मत्स्य साधक है।

(४) मुद्रा—बन्धन स्वरूप असत् संग का त्याग मुद्रा है।

(५) मैथुन—योग साधना से षट्चक्र भेदन कर सहस्रदल स्थित बिन्दुरूप शिव से संयोग ही मैथुन है। इस प्रकार सूक्ष्म पंचमकार साधना ही लय योग है, यही अन्तर्मुखी साधना है।

प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग

वास्तव में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मात्सर्य हो पंचमकार हैं। जो इन पांच की बलि देता है वही सच्चे अर्थों में दिव्य साधक है।

यही सूक्ष्म पंचमकार सेवन जिसमें निष्काम कर्म भावना होती है निवृत्ति मार्ग है। इसमें साधक अपने सब कर्म भगवदर्पण करता है और अंत में जन्ममरण के बन्धनों से मुक्त होता है। स्थूल पंचमकार प्रवृत्ति मार्ग है जिसमें विषय भोग की वासना प्रबल रहती है जो पशुभाव का द्योतक है। इसके विपरीत सात्विक साधना से योगी परम ज्ञान तत्त्व को प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करते हैं। सकाम साधक की भक्ति भावना की प्रचुरता से सांसारिक भोग भोगकर भगवत्कृपा से त्याग की ओर अग्रसर हो जाते हैं।

'भोगेन त्यागो भवति'।

तंत्रों का मत है, भोग से मनुष्य उनकी असारता को जान कर भगवत्कृपा से त्याग की ओर अग्रसर हो जाता है और अंत में परम पद को प्राप्त करता है।

अवतार क्यों

त्रिजगज्जननी महामाया सदा भक्त रक्षक बन कर उनकी रक्षा के लिए अवतार लेती है, और उनके बाधा

स्वरूप दानवों का नाश करती है। दुर्गासप्तशती में उनकी प्रतिज्ञा इस प्रकार है :—

"इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ।।

(जब-जब दानवों द्वारा जगत पीड़ित होगा, तब तब मैं अवतार धारण करके उनका संहार करूंगी) इस प्रतिज्ञा के अनुसार पराशक्ति महामाया ने अनेक अवतार धारण करके भक्तों की रक्षा की है। जहां जिस रूप में वह अवतीर्ण हुई उसी नाम से विख्यात हुई।

दुर्गा सप्तशती में जगदम्बा ने स्वयं अपने अवतारों के विषय में कहा है "मन्वन्तर के अट्ठाईसवें युग में निशुंभ, शुंभ को मारने के लिए विंध्याचल निवासिनी के रूप में अवतीर्ण हूँगी। वैप्रचित्त दानवों के भक्षण करने से मेरा नाम रक्तदन्तिका होगा ; अनावृष्टि होने के कारण जनता की रक्षा के लिए मैं शाकम्भरी रूप में जन्म लूंगी तथा अरुण राक्षस को मारने के लिए भ्रामरी रूप में अवतीर्ण हूँगी।" इस प्रकार दैत्यदलन तथा भक्तों के अभय के लिए महामाया जगदम्बा ने अनेक अवतार लिए हैं। जिनके फलस्वरूप उसके उन अवतारों के अनुरूप ही नाम पड़ गये हैं, जिनका अलग-अलग वर्णन करना कठिन है क्योंकि उनके

एक-एक नाम के साथ एक-एक इतिहास संबंधित है, इसका विस्तृत विवरण तंत्र शास्त्रों में मिलता है।

यह तंत्र शास्त्र मुख्य रूप से दो प्रकार के हैं—शैव और शाक्त। इन दोनों में शिव शक्ति का अविनाभाव सम्बन्ध पाया जाता है। केवल भेद इतना है कि शैव तंत्रों में शिव की प्रधानता मिलती है और शक्ति तंत्रों में शक्ति की प्रधानता पाई जाती है पर दोनों में मंत्र और यन्त्र की प्रधानता स्वीकार की गई है।

मन्त्र

सर्वप्रथम ऋषियों ने उपासना द्वारा जो मनन त्राण स्वरूप सूक्ष्म अनुभूतियां ध्वनिरूप में प्राप्त कीं, वही रहस्यमय ध्वनियां मंत्र कहलाईं। जो वर्णात्मक हैं, जो वस्तुतः परमशिव या पराशक्ति का ही शब्दमय शरीर है अथवा नाम है। जो परमशिव या पराशक्ति से भिन्न नहीं, एक है। तंत्र शास्त्र के अनुसार मंत्र का मुख्य भाग बीज है, जो गुरुमुख से लिया जाता है। मन्त्र दीक्षा देने के कारण शास्त्रों में गुरु को शिवस्वरूप माना गया है।

न केवल तन्त्रों में अपितु वेदों में भी मंत्रों का बड़ा महत्व है। वेद मन्त्रों का भण्डार है, जिनके जप से मनुष्य

आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक उन्नति कर सकता है। इसी प्रकार तांत्रिक मंत्र भी बड़ा महत्व रखते हैं।

गायत्री मंत्र

वेदत्रयी का सारभूत मन्त्र गायत्री मन्त्र है जिसका प्रथम पाद "ओं भू भूवः स्वः" ऋग्वेद का, द्वितीय पाद "तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि" यजुर्वेद का, और तृतीयपाद "धियोयोनः प्रचोदयात्" सामवेद का है। इसी को गायत्री, सावित्री और सरस्वती भी कहते हैं। क्योंकि यह भक्तजनों की पालयित्री है, सारे जगत् की प्रसवित्री है और वाक्स्वरूपिणी है, अर्थात् सूर्य मण्डलात्मक सविता की अधिदेवता है, गायत्री मंत्र की अधिष्ठात्री देवता है तथा सब वेदों की प्रसवित्री सरस्वती स्वरूपा है जो ज्ञानदात्री के रूप में परंब्रह्म से मेल कराती हैं, यही वेदमाता है, संस्कार रूपा है, यही मनुष्य मात्र को संस्कार रूप में पवित्र करती है और उसे सद्वृत्तियों की ओर प्रेरित करती है, अतः इन सब विशेषताओं के कारण गायत्री मन्त्र सब मन्त्रों में उत्तम है। इसी लिए ब्रह्मादि त्रिदेव, यक्ष, गन्धर्व, मनुष्य त्रिसन्ध्या रूप में इसकी उपासना करते हैं। मंत्रो में यही पराशक्ति या कुण्डलिनी शक्ति है।

ब्रह्मादयोऽपि सन्ध्यायां तां ध्यायन्ति जपन्ति च ।
वेदा जपन्ति तां नित्यं वेदोपास्था स्ततः स्मृता ॥
तस्मातसर्वे द्विजाः शाक्तार्न शैवार्न वैष्णवाः ।
आदि देवीमुपासन्ते गायत्रीं वेद मातरम् ॥

(देवी भागवत)

ऊपर लिखे श्लोक के अनुसार सब हिन्दू गायत्री उपासक न वैष्णव हैं न शैव हैं, अपितु द्विज हैं। वेदोक्ति है :—

"प्रथमं मातृतो जन्म द्वितीयं मौंजि बन्धनात् ।
अत्र मातातु गायत्री पितात्वाचार्य उच्यते ॥"

प्रथम लौकिक जन्म माता से पाया जाता है, पर दूसरा जन्म मौंजी बन्धन (यज्ञोपवीत) संस्कार से होता है जिसमें द्वितीय आध्यात्मिक जन्मदात्री गायत्री है और पिता दीक्षागुरु है। इस प्रकार संस्कार से दीक्षार्थी का दूसरा आध्यात्मिक जन्म होता है फिर वह द्वितीय जन्मधारी द्विज धर्म कर्म का अधिकारी बन जाता है।

प्रणव (ओंकार)

वेदों का सार ओंकार साक्षात् ब्रह्म स्वरूप है। जो तीन मात्राओं अ, उ, म् और अर्धमात्रा नाद बिन्दु के संयोग से बना है। ओंकार की प्रथम मात्रा अकार ऋग्वेद स्वरूप 'भू' महाव्याहृति—विश्वसृष्टा ब्रह्मा है। ओंकार की दूसरी

मात्रा उकार है जो यजुर्वेद स्वरूप 'भुवः' महाव्याहृति स्थिति कारक विष्णु है। ओंकार की तीसरी मात्रा मकार है जो सामवेदात्मक 'स्वः' महाव्याहृति वर्णनातीत शिव-स्वरूप है।

अर्धबिन्दु प्रकृति पुरुष सामंजस्यमयी मूल प्रकृति आदि-शक्ति का द्योतक है जिससे यह सारा संसार पैदा होता है, और उसी में लय हो जाता है। इस नाद बिन्दु रूप ओंकार के उच्चारण से सब मन्त्र सार्थक एवं पूर्ण हो जाते हैं अतएव हर मन्त्र के उच्चारण से पहले ओंकार का उच्चारण अवश्य किया जाता है।

मनुस्मृति का निर्देश है :-

"अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः।
वेदत्रयान्निरदुहद्भूर्भुवः स्वरितीति च॥

(प्रजापति ने ॐ का दोहन तीन वेदों के भू भुवः, स्वः, महाव्याहृतियों से किया, जो महामन्त्र रूप 'ॐ' परिणत हुआ)

इस महामंत्र का महत्व उपनिषदों, ब्राह्मण-ग्रन्थों, पुराणों, तन्त्रों, दर्शनों तथा श्रीमद्भगवद्गीता में भी यत्र-तत्र मिलता है। तैतरीय उपनिषद् में "ओमिति ब्रह्म"

"ओमितीदमिदं सर्वम्" (ॐ ब्रह्म है) (जगत में जो कुछ है वह ॐ है) इसी प्रकार कठोपनिषद् में ॐ की महत्ता निम्नलिखित श्लोक में वर्णित है।

सर्ववेदा यत्पदमामनन्ति-
तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योंमित्येतत् ॥

(सब वेद जिस पद का विधान करते हैं, सब तप जिस का उच्चारण करते हैं और जिसके उपलक्ष्य में ब्रह्मचर्य का आचरण किया जाता है वह पद मैं संक्षेप में कहता हूं "ॐ, यह वह पद है)

पातंजल योग दर्शन में "तस्य वाचकः प्रणवः" कहा गया है (उस ईश्वर का वाचक ओंकार है) ब्राह्मण ग्रन्थों में "ॐकारो यस्य मूलम्" (जिस वेद का मूल ओंकार है) क्योंकि ॐ उच्चारण करने के अनन्तर ही वेदारम्भ होता है। तंत्रों में "ओंकारमक्षरं ब्रह्म" (ओंकार साक्षात् परंब्रह्म स्वरूप" है) श्रीमद्भगवद्गीता में भी "प्रणवः सर्ववेदानां" (वेदों का सारभूत ओंकार मैं ही हूं) इस प्रकार महामन्त्र ओंकार की महत्ता सर्वशास्त्र सम्मत है अतः हर किसी भक्त को वेदत्रयी तथा सब तन्त्रों का सारभूत अक्षरब्रह्म

या महामातृका स्वरूप ओंकार का सदा जप करना चाहिए ।

महामातृका या अक्षर ब्रह्म

तान्त्रिक साहित्य में नाद का विशिष्ट स्थान है जिसको शब्द्ब्रह्म नादब्रह्म या अक्षरब्रह्म के नाम से पुकारा जाता है । इसी नाद से सर्वप्रथम सूक्ष्म पंचभूतों का प्रादुर्भाव हुआ जो सारे ब्रह्माण्ड के उपादान हैं । यह नाद स्फुरण कुण्डलिनी जागरण का एक विशिष्ट लक्षण है । इस नाद के साथ बिन्दु और कला तत्त्व अंगांगिभाव से जुड़े हुए हैं । अतः तन्त्रों में सर्वत्र नाद बिन्दु कला की चर्चा है । शारदातिलक में जगत् सृष्टि के प्रसंग में यह श्लोक आया है :—

"सच्चिदानन्दविभवात्सकलात्परमेश्वरात् ।
आसीच्छक्तिस्ततोनादस्ततो बिन्दु समुद्भवः ॥

इस श्लोक में नाद बिन्दु कला इन तीनों की चर्चा की गई है । यहां कला का सामान्य वाच्यार्थ न लेकर सकलात् का आध्यात्मिकार्थ शक्ति सम्पन्न शिव का आभास मिलता है, जो कला (शक्ति) समष्टि रूप में उसमें अवस्थित है । इसी शक्ति से नाद का आविर्भाव होता है एवं नाद से बिन्दु का । यही बिन्दु जब घनीभूत अवस्था या स्थूलत्व को

प्राप्त करता है तो नाद बिन्दु कहलाता है। जैसे भाप घनीभूत होकर जल बिन्दु रूप में परिणत होता है। यही घनीभूत नादबिन्दु शब्दब्रह्म, अक्षरब्रह्म, मातृका शक्ति आदि नामों से पुकारा जाता है। इसी शब्दब्रह्म संवित्मयी शक्ति से सर्वप्रथम सूक्ष्मनाद का, नाद से अर्धचन्द्र, अर्धचन्द्र से बिन्दु का, बिन्दु रूप परा से पश्यन्ती मध्यमा वैखरी रूप चतुर्विध शब्दों का आविर्भाव होता है। यौगिक प्रक्रिया में परा का उदय मूलाधार से, पश्यन्ती का स्वाधिष्ठान से, मध्यमा का हृत्पद्म से, तथा वैखरी का कंठ, तालु एवं मुख के अन्य भागों से स्थूल रूप होता है।

शब्द या नाद की अन्तर्मुखावस्था सूक्ष्मनाद या परनाद है और इसी की बहिर्मुखावस्था के द्योतक अक्षर हैं। जिनका क्षरण उसके अवयव समष्टिभूत वर्णों में होता है जो अक्षर मातृका कहलाती है। यही अक्षरमातृका विश्व-जननी है, अक्षर ब्रह्म की क्षरणासिका शक्ति है।

यह अक्षर या वर्ण, प्रपंचसार के अनुसार तीन प्रकार के हैं :—

(१) सौम्य (चन्द्र सम्बन्धी)
(२) सौर (सूर्य सम्बन्धी)
(३) आग्नेय (अग्नि सम्बन्धी)

सौम्य :—चन्द्र सम्बन्धी सोलह स्वर हैं, जैसे—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः। इनमें अ, इ, उ, और अनुसार पुंलिग हैं आ, ई, ऊ तथा विसर्ग स्त्रीलिंग हैं। ऋ, ॠ, लृ, ॡ नपुंसक हैं। ह्रस्व स्वरों की स्थिति पिंगला नाडी में, दीर्घ स्वरों की स्थिति इडा में एवं ऋ, ॠ, लृ, ॡ की स्थिति ब्रह्मनाडी सुषुम्ना में होती है।

"पिंगलायां स्थिता ह्रस्वाइडायां संगताः परे।
सुषुम्ना मध्यगा ज्ञेयाश्चत्वारोये नपुंसकाः॥

(शारदा तिलक)

इनका सम्बन्ध चन्द्र की सोलह कलाओं से है जो कामदायिनी कलाएं कहलाती हैं जिनका निवास निम्न-लिखित स्वरों में है और कलाओं के नाम भी साथ में दिये गये हैं—

१. अँ अमृता
२. आँ मानदा
३. इँ पूषा
४. ईँ तुष्टि
५. उँ पुष्टि
६. ऊँ रति
७. ऋँ धृति
८. ॠँ शशनी
९. लृँ चन्द्रिका
१०. ॡँ कान्ति
११. एँ जोत्सा
१२. ऐँ श्री
१३. ओँ प्रीति
१४. औँ अंगना
१५. अँ पूर्णा
१६. अः पूर्णामृता

दूसरे सौर्य (सूर्य) सम्बन्धी बारह कलाएं हैं जो वसुदा कलाएं कहलाती हैं, सूर्य के अग्नि सोमात्मक होने के कारण यह वसुदा कलाएं दो-दो व्यंजनों के रूप में होती हैं केवल म सूर्य स्वरूप है। उनके वर्ण और कलाओं के नाम निम्न-लिखित हैं :—

१. कं भं	तपनी
२. खं बं	तापिनी
३. गं फं	धूम्रा
४. घं पं	मरीचि
५. ङं नं	ज्वालिनी
६. चं धं	रुचि
७. छं दं	सुषुम्ना
८. जं थं	ओगदा
९. झं तं	विश्वा
१०. ञं णं	बोधिनी
११. टं ढं	धारिणी
१२. ठं डं	क्षमा

तीसरी आग्नेयी (अग्नि) सम्बन्धी दस कलाएं हैं जो धर्मप्रदा कहलाती हैं उनके वर्ण और कलाओं के नाम इस प्रकार हैं :—

१.	यं	धूम्रार्चि	६.	षं	सुश्री
२.	रं	ऊष्मा	७.	सं	स्वरूपा
३.	लं	ज्वलिनी	८.	हं	कपिला
४.	वं	ज्वालिनी	९.	लं	हविवहा
५.	शं	विस्फुलिंगनी	१०.	क्षं	कविवहा

यह सारी सोम सूर्य अग्न्यात्मक कलाएं शब्द ब्रह्ममय परावाक भगवती के अवयव मात्र हैं। समष्टिरूप में यह तीनों एक ही हैं, जो ज्ञान राज्य में बिन्दुरूप परा अक्षर ब्रह्मस्वरूप होकर, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी से पोषित होकर वर्ण, शब्द, अर्थवाङ्मय रूप में अहं है जिसमें सारी वर्णमाला एक ही धागे में पिरोई हुई है। माला रूप में सम्बन्ध होने के कारण इसे वर्णमाला या अक्षरमातृका कहते हैं।

कश्मीर के शाक्त आचार्यों के अनुसार यही मातृका शक्ति, प्रत्यवमर्शिनी संवित् शक्ति है। यही उसे प्रकाश का आभास देती है क्योंकि इसी शक्ति के आश्रय से ही

सारी सत्ता प्रकाशमान होती है। अ प्रकाश है और ह विमर्श है। इस प्रकार अ से ह तक सारा अक्षर जाल मातृका मण्डल है जिसे कश्मीर में मातृका चक्र भी कहते हैं। इसीलिए पूर्व समय में यहा मातृका उपासना का नियम था। शक्तिपूजा के समय यहां सर्वप्रथम अक्षर मातृका या वर्णमाला स्वरूप में अमायै नमः, कामार्यै नमः, चार्वङ्ग्यै नमः, टंकधारिण्यै नमः, तारायै नमः, पार्वत्यै नमः, यक्षिण्यै नमः, फिर कुल देवियों या इष्टदेवियों को पूजा जाता था। आज भी यही परम्परा यहां प्रचलित है ; ऊपर लिखे मन्त्रों में वर्णमाला के स्वर-व्यंजन स्वरूप आद्याक्षरों का निर्देश करके समस्त वर्णमाला का प्रतिनिधित्व करके सारी अक्षर मातृका की उपासना लक्षित है।

यह वर्णमातृकाएं पच्चास होतो हुई भी अनन्त हैं तथा अनन्त होती हुई मी एक है जो मूलतः बिन्दु में अवस्थित है। बहिर्मुख रूप में यही नाद है जिसका उच्चारण करके नाद रूप में अभिव्यक्त किया जाता है और कान से सुना जाता है एवं मंत्र रूप में जपा जाता है जिससे हमारा मन निर्मल हो जाता है। मन निर्मल होने पर वह ज्तोतिर्मय होने लगता है। 'मनोज्योति' जिसे हम चित् ज्योति भी कह सकते हैं, जिसके विकास से काम की

उत्पत्ति होतो है । योगियों से अभिलषित होने के कारण यह काम कहलाता है, जो शिव शक्ति का सामरस्य रूप परम बिन्दु है इसो परम बिन्दु के प्रतिबिम्ब से तीन बिन्दु त्रिकोण रूप में सूर्य, चन्द्र अग्नि के प्रतीक हैं। सृष्टि, स्थिति, संहार के विधायक होते हुए भी यह आपस में अभिन्न है । अग्नि सूर्य से ही उत्पन्न होती है, चन्द्र सूर्य का ही प्रतिबिम्ब है अतः सूर्य की अन्तर्वर्तीय अग्निशक्ति से सोम शक्ति का व्यापार जगत् में निरन्तर चल रहा है। यह सारा कार्यकलाप वास्तव में परम बिन्दु स्वरूप कामकला का ही कार्य है जो शिव-शक्ति का सामरस्य भाव है ।

यन्त्र

वेद और तंत्र शास्त्रों में मंत्रों तथा यंत्रों का बड़ा महत्व है । यह दोनों परंब्रह्म परमशिव या पराशक्ति के ही स्वरूप हैं । इन दोनों का अभेदात्मक सम्बन्ध है। जैसे मन्त्रवर्णात्मक रहस्यमय ध्वनिशाँ शब्द ब्रह्म स्वरूप हैं जिनका प्राचीन मन्त्रदृष्टाओं ने मनन और त्राण रूप में अनुभव किया था, उसी प्रकार कालांतर में उन्होंने उन्हीं शब्दब्रह्म स्वरूप मन्त्रों का रेखात्मक आकार भी अनुभव किये जो यंत्र कहलाये । अर्थात् परंब्रह्म या पराशक्ति का शब्दमय शरीर

मन्त्र और उनके रेखात्मक शरीर यन्त्र कहलाये। अथवा परंब्रह्म का मन्त्र नाम और यन्त्र आकृति, जो पराशक्ति या परमशिव से भिन्न नहीं है एक है। तंत्र शास्त्रों में यह मंत्र कई प्रकार के हैं जो विभिन्न साधनाओं से सम्बन्ध रखते हैं। उन सब यंत्रों में श्रीचक्र का स्थान सर्वोपरि है। इसी कारण श्रीचक्र को चक्रराज भी कहते हैं। इसकी उपासना अन्तर्मुख या सूक्ष्म, बहिर्मुख या स्थूल (रूप-गुणात्मक) दो मुख्य रूपों में प्रायः साधक करते हैं।

अन्तर्मुख या आध्यात्मिक पूजा प्रायः योगियों द्वारा की जाती है जिसमें वे अपने शरीर में ही आत्मस्वरूप श्रीचक्र का अस्तित्व मान कर षटचक्रों को पार करते हुए महामातृका कुण्डलिनी परम बिन्दु रूप शिव में लीन करते हैं जिससे उन्हें शिवोऽहं के रूप में आत्मस्वरूप का साक्षात्कार होता है।

स्थूल या बहिरंग पूजा में भक्तिभाव युक्त भक्तगण श्रीचक्र को साक्षात त्रिपुरसुन्दरी ही समझकर अनन्य भक्तिभाव से अपने-अपने सम्प्रदायों के अनुसार विविध पूजा विधि विधानों से पूज कर अपनी-अपनी अभीष्ट कामनाओं को प्राप्त करते हैं। नित्य निष्काम पूजा विधान

में पंचोपचार पूजा विधान शास्त्रों में वर्णित है। उसका यथोचित निरूपण नीचे किया जाता है।

श्रीचक्र के नौ चक्रों का सात्विक पूजा विधान

नित्य श्रीचक्र पूजा विधान में सात्विक रूप से पंचोपचर पूजा का प्रयोग किया जाता है। यह प्रायः निष्काम भाव से की जाती है। इसमें गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आरम्भ में समर्पित किये जाते हैं फिर क्रमशः नौ चक्रों की अधिष्ठात्री देवियों का नामोच्चारण करते हुए नमस्ते नमस्ते बोलते हुए फूलों से अर्चा की जाती है। पूजा विधान इस प्रकार है :—

सर्वप्रथम अर्घे के जल से पूजा का विनियोग डाला जाता है, फिर करन्यास, हृदयादिन्यास, ध्यान, पंच पूजा फिर फूलों से नौ चक्रों की पूजा। अन्त में फिर करन्यास, हृदयादिन्यास और फिर पंच पूजा।

विनियोग

अस्य श्री शुद्ध शक्ति सम्बुद्धयन्त खड्गमाला महा-मन्त्रस्य उपस्थ इन्द्रियाधिष्ठायि वरुणादित्य ऋषये नमः। गायत्री छन्दसे नमः। सात्विक ककार भट्टारक पीठस्थित शिवकामेश्वरांक निलयायै कामेश्वरी ललिता महा-

भट्टारिकायै देवतायै नमः । ऐं बीजम्, सौं शक्ति, क्लीं कीलकम्, समस्त प्रकट गुप्त गुप्ततर सम्प्रदाय, परापर रहस्य, परापराति रहस्य योगिनोवृन्द संस्थित श्रीचक्रगत समस्त देवीना पूजने विनियोगः ।

हाथों का न्यास (करन्यास)

(१) ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः
(२) ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः
(३) ह्रूं मध्यमाभ्यां नमः
(४) ह्रैं अनामिकाभ्यां नमः
(५) ह्रौं कनिष्ठाभ्यां नमः
(६) ह्रः करतल करपृष्ठाभ्यां नमः

हृदयादिन्यास

(१) ह्रां हृदयाय नमः
(२) ह्रीं शिरसे स्वाहा
(३) ह्रूं शिखायै वषट्
(४) ह्रैं कवचाय हुम् ।
(५) ह्रौं नेत्र त्रयाय वौषट् ।
(६) ह्रः अस्त्राय फट् ।

ध्यान (देवी का आकार स्मरण नीचे लिखे श्लोक के अनुसार)

'आराक्ताभां त्रिनेत्रां मणिमुकुटवतीं रत्नताटंक-रम्यां, हस्ताम्बोजैः सपाशांकुशमदनधनुः सायकैर्विस्फुरन्तीम् । आपीनोत्तुंग वक्षोरुहतटविलुठच्चारुहारोज्जवलांगीं ध्यायाम्यम्भोरुहस्थामरुण निवसनामीश्वरीमीश्वराणाम् ।

"मैं रत्नमण्डित मुकुट धारिणी दोताटण्कों तथा वक्षस्थल पर मनोहर हार से सुशोभित, लाल कमल पर विराजमान, रक्तवर्णा, त्रिनेत्रा, राजराजेश्वरी चक्रेश्वरी का ध्यान करता हूं जिसके कर कमलों में पाश, अंकुश, धनुष तथा पंचबाण सदा जगत् कल्याण के लिए रत हैं ।)

पंचोपचार पूजा

इसमें गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य इष्टदेव या इष्टदेवी को समर्पित किये जाते हैं ।

लं पृथिव्यात्मिकायै गन्धं समर्पयामि नमः

हं आकाशात्मिकायै पुष्पाणि समर्पयामि नमः

यं वाय्वात्मिकायै धूपमाघ्रायामि नमः

रं अग्न्यात्मिकायै दीपं संदर्शयामि नमः

वं अमृतात्मिकायै अमृतं महानैवेद्यं निवेदयामि नमः

सं सर्वात्मिकायै सर्वोप्चािन् समर्पयामि नमः

पंचपूजा के बाद सर्वप्रथम भूपुर के बाह्य त्रिरेखात्मक चक्र के सामने अपने समस्त अंगों को देवीमय समझ कर नतमस्तक होकर तद्भाव से पढ़ें :—

ऐं ह्लीं श्रीं नमः त्रिपुर सुन्दरि। हृदय देवि। शिरोदेवि। शिखादेवि। कवचदेवि। नेत्रदेवि। अस्त्र देवि। कामेश्वरी। भगमालिनि। नित्यक्लिन्ने। मेरुण्डे। वह्निवासिनि। महावज्रेश्वरि। शिवदूति। त्वरिते। कुल-सुन्दरि। नित्ये। नील पताके। विजये। सर्वमंगले। ज्वालामालिनि चित्रे। महानित्ये।

तदनन्तर शाक्त गुरु परम्परा का मानसिक ध्यान करते हुए पढ़ें :—

परमेश्वर, परमेश्वरि। मित्रेशमयि। शष्ठशमयि। उड्डीशमयि। चर्यानाथमयि। लोपामुद्रामयि। अगस्त्यमयि। कालतापनमयि। धर्माचार्यमयि। मुक्तकेशेश्वरमयि। दीपकलानाथमयि। विष्णुदेवमयि। प्रभादेवमयि। तेजो-देवमयि। मनोजदेवमयि। कल्याणदेवमयि। रत्नदेवमयि। वासुदेवमयि। श्रीरामानन्द देवमयि।

गुरु परम्परा के ध्यान के पश्चात् सर्वसिद्धि स्वरूपा श्रीविद्या का ध्यान करते हुए पढ़ें :—

अणिमा सिद्धे। लघिमा सिद्धे। महिमा सिद्धे। ईशित्व सिद्धे। वशित्व सिद्धे। प्रकाम्य सिद्धे। भुक्ति सिद्धे। इच्छा सिद्धे। प्राप्ति सिद्धे। सर्व काम सिद्धे।

सर्वकामदा श्रीविद्या के ध्यान के बाद नौ चक्रों की पूजा फूलों से करें, साथ ही हर मन्त्र के साथ नमस्ते का उच्चारण भी करें।

सर्वप्रथम बाह्य क्रम से त्रैलोक्यमोहन चक्र भूपुर की पूजा करें—

ब्राह्मि, माहेश्वरि, कौमारि, वैष्णवि वाराहि, माहेन्द्रि, चामुण्डे, महालक्ष्मि, सर्व संक्षोभिनि, सर्वविद्राविनि, सर्वाकर्षिणि, सर्ववशंकरि, सर्वान्मादिनि, सर्वमहांकुशे, सर्वखेचरि, सर्वबीजे, सर्वयोने, सर्वत्रिखण्डे, त्रयेलोक्य मोहन चक्रस्वामिनि प्रकट योगिनि ।

पुष्पांजलि

अभीष्टसिद्धि मे देहि शरणागत वत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चणम् ।।

सर्वाशा परिपूरक षोडशदल चक्र पूजा :—

कामाकर्षिणि, बुद्ध्यकर्षिणि, अहंकाराकर्षिणि, शब्दाकर्षिणि, स्पर्शाकर्षिणि, रुपाकर्षिणि, रसाकर्षिणि, गन्धाकर्षिणि, चित्ताकर्षिणि, धैर्याकर्षिणि, स्मृत्याकर्षिणि, नामाकर्षिणि, बीजाकर्षिणि, आत्माकर्षिणि, अमृताकर्षिणि, शरीराकर्षिण, सर्वाशा परिपूरक चक्र स्वामिनि गुप्त योगिनि ।

पुष्पांजलि :—

अभीष्टसिद्धि मे देहि शरणागतवत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयावर्णाचणम् ।।

सर्व संक्षोभन अष्टदल चक्र पूजा

अनंग कुसमे, अनंग मेखले, अनंगमदने, अनंग मदनातुरे, अनंगरेखे, अनंगवेगिनि, अनंगांकुशे, अनंगमालिनि, सर्वक्षोभन चक्र स्वामिनि संप्रदाय योगिनि ।

पुष्पांजलि :

अभीष्टसिद्धि मे देहि शरणागत वत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चणम् ॥

सर्वसौभाग्यदायक चौदह त्रिकोण पूजा :—

सर्वसंक्षोभिनि, सर्वविद्राविनि, सर्वाकर्षिणि, सर्वाह्लादिनि, सर्वसम्मोहनि, सर्वस्तम्भनि, सर्वजृंभनि, सर्ववशंकरि, सर्वरंजनि, सर्वोन्मादिनि, सर्वार्थसाधिके, सर्वसंपत्तिपूरिणि, सर्वमन्त्रमये, सर्वद्वन्दक्षयंकरि, सर्वसौभाग्यदायक चक्रस्वामिनि सम्प्रदाय योगिनि ।

पुष्पांजलि

अभीष्ट सिद्धि मे देहि शरणागत वत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं चतुर्थावरणार्चणम् ॥

सर्वार्थसाधक दस त्रिकोण चक्र पूजा :

सर्वसिद्धिप्रदे, सर्वसम्पत्प्रदे, सर्वप्रियंकरे, सर्वमंगलकारिणि, सर्वकामप्रदे, सर्वदुखप्रशमनि, सर्वविघ्ननिवारिणि, सर्वांगसुन्दरि, सर्वसौभाग्यदायिनि, सर्वार्थसाधक चक्र स्वामिनि कुलोत्तीर्ण योगिनि ।

पुष्पांजलि

अभीष्ट सिद्धि मे देहि शरणागत वत्सले
भक्त्या समर्पये तुभ्यं पंचमावरणार्चणम् ।

सर्वरक्षाकर दस त्रिकोण पूजा :—

सूर्वज्ञे, सर्वशक्ते, सर्वैश्वर्यप्रदे. सर्वानन्दमये, सर्वव्याधिविनाशिनि, सर्वाधारस्वरूपे, सर्वपापहरे, सर्वानन्दमये, सर्वरक्षास्वरूपिणि, सर्वेप्सितफलप्रदे, सर्वरक्षाकर चक्र स्वामिनि रहस्य योगिनि ।

पुष्पांजलि

अभीष्ट सिद्धि म देहि शरनागत वत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं षष्ठावरणार्चणम् ।।

सर्वरोगहर आठ त्रिकोण पूजा :—

वशिनि, कामेश्वरि, मोदिनि, विमले, अरुणे, जयनि, सर्वेश्वरि, कौलिनि, सर्वरोगहर चक्र स्वामिनि अति रहस्य योगिनि ।

पुष्पांजलि

अभीष्ट सिद्धि मे देहि शरणागत वत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं सप्तमावरणार्चणम् ।।

महासिद्धिप्रद त्रिकोणात्मक चक्र पूजा △ :—

वाणिनि, चापिनि, पाशिनि, अंकुशनि, महाकामेश्वरि, महावज्रेश्वरि, महाभगमालिनि, महाश्रीसुन्दरि, महासिद्धिप्रद चक्र स्वामिनि अति रहस्य योगिनि ।

पुष्पांजलि

अभीष्ट सिद्धि मे देहि शरणागत वत्सले ।
भक्त्या समर्पयि तुभ्यं अष्टमावरणार्चणम् ।।

सर्वानन्दमय चक्र बिन्दु पूजा :—

श्री श्री महाभट्टारिके सर्वानन्दमय चक्र स्वामिनि परापर रहस्य योगिनि ।

पुष्पांजलि

अभीष्ट सिद्धि मे देहि शरणागत वत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं नवमावरणार्चणम् ।।

समष्टि रूप में नौ चक्राधिष्ठात्रियों की शाक्त और शैव सम्प्रदाय के अनुसार पूजा :—

शाक्त

त्रिपुरे, त्रिपुरेशे, त्रिपुरसुन्दरि, त्रिपुरवासिनि, त्रिपुरश्री, त्रिपुरमालिनि, त्रिपुरासिद्धे, त्रिपुराम्बा, महात्रिपुरसुन्दरि ।

शैव

महामाहेश्वरि, महामहाराज्ञि, महामहाशक्ते, महामहा गुप्ते, महामहाज्ञप्ते, महामहानन्दे, महामहास्पन्दे, महा-महाशये, महामहाश्रीचक्र नगरनिवासिनि नमस्ते नमस्ते नमस्ते स्वाहा श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ।।

पुष्पांजलि

अभीष्ट सिद्धि मे देहि शरणागत वत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं समस्तावरणार्चणम् ।।

समर्पण :—

आरम्भ की तरह अंत में ह्लां, ह्लीं, ह्लूं, ह्लैं, ह्लौं, ह्लः, इन बीज अक्षरों से फिर करन्यास और हृदयादिन्यास करना चाहिए तदनंतर महात्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करके निम्नलिखित मंत्र से पूजा सर्मपित करनी चाहिए :—

गुह्याति गुह्य गोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ।।

अनेन मन्त्रार्चणेन कामेश्वरांकनिलया महाकामेश्वरी सांगा सायुधा मातृचक्र परिवृता प्रीतास्तु ।

उपसंहार

अंत में हम इस निष्कर्ष पर सहज ही पहुँचते हैं कि अहंरूप शब्दब्रह्म या 'अक्षरब्रह्म' ही सारे उद्भवचक्र का कारण है जिसका मूल तत्त्व 'इदं' विमर्शात्मक परमशिव है। इसी परमशिव ने आदिगुरु रूप में साधकों के प्रबोध के लिए वेद और तन्त्रों का आविर्भाव किया, जो शब्दात्मक तथा दिव्य ज्ञान स्वरूप हैं। शास्त्रों के अनुसार यही अपौरुषेय दिव्यज्ञान चितशक्ति को जगाने वाला है।

"शिवस्तन्त्रकर्त्ता, शिवो वेद पुरुषः।"

यद्यपि आत्मा स्वरूपतः नित्य शुद्ध है तथापि उसकी प्रबुद्ध अवस्था ही श्रेष्ठ है। अप्रबुद्ध अवस्था चेतन होती हुई भी अचेतनवत् है, 'शिव' होते हुए भी शववत् है। इसीलिए वेद और तंत्रों की घोषणा है—"प्रबुद्धः सर्वदा-तिष्ठेत्" हमेशा प्रबुद्ध रहो। यही प्रवुद्धता मानव जीवन की सच्ची उपलब्धि है जिससे पूर्णत्व प्राप्ति होती है। यह पूर्णत्व प्राप्ति क्या है ? परमशिव या संवित्‌शक्ति का साक्षात्कार होना ही पूर्णत्व प्राप्ति है, जिसके फलस्वरूप शिव से पृथ्वी तत्त्वात्मक सारा विश्व आत्मा तथा शरीभाव से प्रकाशित होता है। अर्थात् परमशिव ही चराचर विश्व-स्वरूप है—"सर्वं खलु इदं ब्रह्म।" जिसका अंश मैं हूं ऐसा आभास होना इस प्रकार की संवेदना का उदय होना ही आत्मजागरण है, जो अद्वैत साधना में जीवन का परम लक्ष्य माना गया है। इस आत्मजागरण के लिए ज्ञान प्राप्ति की आवश्यकता है। उपनिषदों का आदेश है :—

"स्वाध्यायान्मा प्रमद"

सदा ज्ञानमूलक साहित्य अर्थात् वेद, शास्त्र आदि का पठन और मनन करना चाहिए जो मन को शुद्धि तथा सात्विकता प्रदान करते हैं। इसो मनः शुद्धि से श्रद्धा उत्पन्न होती है। "श्रद्धावाँलभते ज्ञानम्।" श्रद्धा से ज्ञान प्राप्त होता है जो

कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का आभास देता है। इसी ज्ञान से भगवद्-भक्ति जागृत हो जाती है जो भगवदुपासना की प्रेरणा देती है। प्रेरणा पाते ही साधक सद्गुरु की खोज करता है, और उसके मिल जाने पर ही वह उसकी शिक्षा के अनुसार उपासनारत रहता है। आगे चल कर श्री गुरू ही उसके संकल्प विकल्पों के उन्मूलन करने में समर्थ होता है तथा संवित् शक्ति का भी उद्भावक होता है जिससे साधक की प्रसुप्त चित् शक्ति जगती है।

श्री गुरु सर्वकारण भूता शक्ति। (भावनोपषिद्)

इस आत्म जागरण शक्ति का कारण श्री गुरु हैं। पात्र के माध्यम से यह उपासना तंत्रशास्त्रों में स्थूल, सूक्ष्म तथा पररूप तीन प्रकार से वर्णित है, जिसे हम कायिक, वाचिक तथा मानसिक उपासना कह सकते हैं। इसमें स्थूल का सम्वन्ध देवविग्रह (देव मूर्ति) रूप गुण पूजा से है।

"विग्रहादि रूपं स्थूलं।"

(भावनोपनिषद्)

सूक्ष्म उपासना का सम्बन्ध वाचिक या मानसिक जप से है। इस उपासना में जप के अतिरिक्त स्तुति पाठ और कीर्तन भी आता है।"

"मानसोजपः सूक्ष्मम्"।

(भा० निषद)

पररूप का सम्वन्ध आत्मभाव रूप सोऽहं की श्वासोच्छ्वास रूप में उपासना करना है।

स्वात्मैव भावना परत्वं पररूपम्।

(भा० निषद)

यह तीनों उपासना पद्धतियां भाव मूलक हैं। पूर्ण निष्ठा ही भाव है जो आत्मजागरण का मूल कारण है। आत्मजागरण होते ही गुरु कृपा से वह स्थूल से सूक्ष्म पररूप अवस्था को प्राप्त करता है। इस पररूप अवस्था का प्राप्त करना ही प्रस्तुत पुस्तक का लक्ष्य है जो आत्मजागरणात्मक पूर्णत्व प्राप्ति है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः



शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
iii	9	साहिक	साहिब
2	20	मायितं	मायिनं
9	4	कार्यसिद्धर्थंम	कार्यसिद्ध्यर्थंम
9	13	कात	काते
10	11	एकेवार्हं	एकैवाहं
12	7	शत्र	शत्रु
17	15	को	के
17	18	गौरो को	गौरी की
19	16	17-22	17-21
19	17	23-26	22-26
19	18	27-32	27-31
22	12	बहस्यां	बहुस्यां
25	6	सर्वकतृत्व	सर्वकर्तृत्व
26	10	कुंचकों	कंचुकों
26	19	अन्य:करण	अन्त:करण
31	3	अभागीभाव	अंगांगिभाव
33	3	विधान	पिधान
36	14	त्रिपुरसुन्दरा	त्रिपुरसुन्दरी
37	16	शंकर	शंकर
58	3	इय्टदायिनी	इष्टदायिनी
88		हृदय	हृदा
88	4	शष्ठशमयि	शष्ठेशमयि
90	21	कुलोत्तोर्ण	कुलोत्तीर्ण
91	10	म	मे
93	3	बीज्ञ	बीज

कश्मीर शाक्त विमर्श

जगन्नाथ सिबू